ओ३म्

सत्यार्थ-सन्देश

श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास

नवलखा महल परिसर, गुलाब बाग, महर्षि दयानन्द मार्ग,
उदयपुर-313001 (राज.)

₹ १०

राणा द्वारा मानसिंह का, यह जो मानहरण था। हल्दीघाटी के होने का,यही मुख्य कारण था।।
लगी सुलगने आग समर की, भीषण आग लगेगी। प्यासी है अब वीररक्तसे, मां की प्यास बुझेगी।।
स्वतन्त्रता का कवच पहन, विश्वास जमाकर भाला में। कूद पड़ा राणा प्रताप उस, समर-वह्नि की ज्वाला में।।
अभिमानी मान-अवज्ञा से, थर-थर होने संसार लगा। पर्वत की उन्नत चोटी पर, राणा का भी दरबार लगा।।
जब एक-एक जन को समझा, जननी-पद पर मिटने वाला। गम्भीर भाव से बोल उठा, वह वीर उठा अपना भाला।।
भूलो इन महलों के विलास, गिरि-गुहा बना लो निज-निवास। अवसर न हाथ से जाने दो, रण-चण्डी करती अट्टहास।।
विश्वास मुझे निज वाणी का, है राजपूत-कुल-प्राणी का। वह हट सकता है वीर नहीं, यदि दूध पिया क्षत्राणी का।।
नश्वर तनको डट जाने दो, अवयव-अवयव छट जाने दो। परवाह नहीं कटते हों तो, अपने को भी कट जाने दो।।
अब उड़ जाओ तुम पांखों में, तुम एक रहो अब लाखों में। वीरो हलचल सी मचा-मचा, तलवार घुसा दो आंखों में।।
यदि सके शत्रु को मार नहीं, तुम क्षत्रिय वीर-कुमार नहीं।
मेवाड़-सिंह मरदानों का, कुछ कर सकती तलवार नहीं।।
मेवाड़-देश, मेवाड़-देश,
समझो यह है मेवाड़-देश।
जब तक दुख में मेवाड़-देश,
वीरो तब तक के लिए क्लेश।।
सन्देश यही उपदेश यही,
कहता है अपना देश यही।
वीरो दिखला दो आत्म-त्याग,
राणा का है आदेश यही।।

सौजन्य-
कविवर श्यामनारायण पाण्डेय

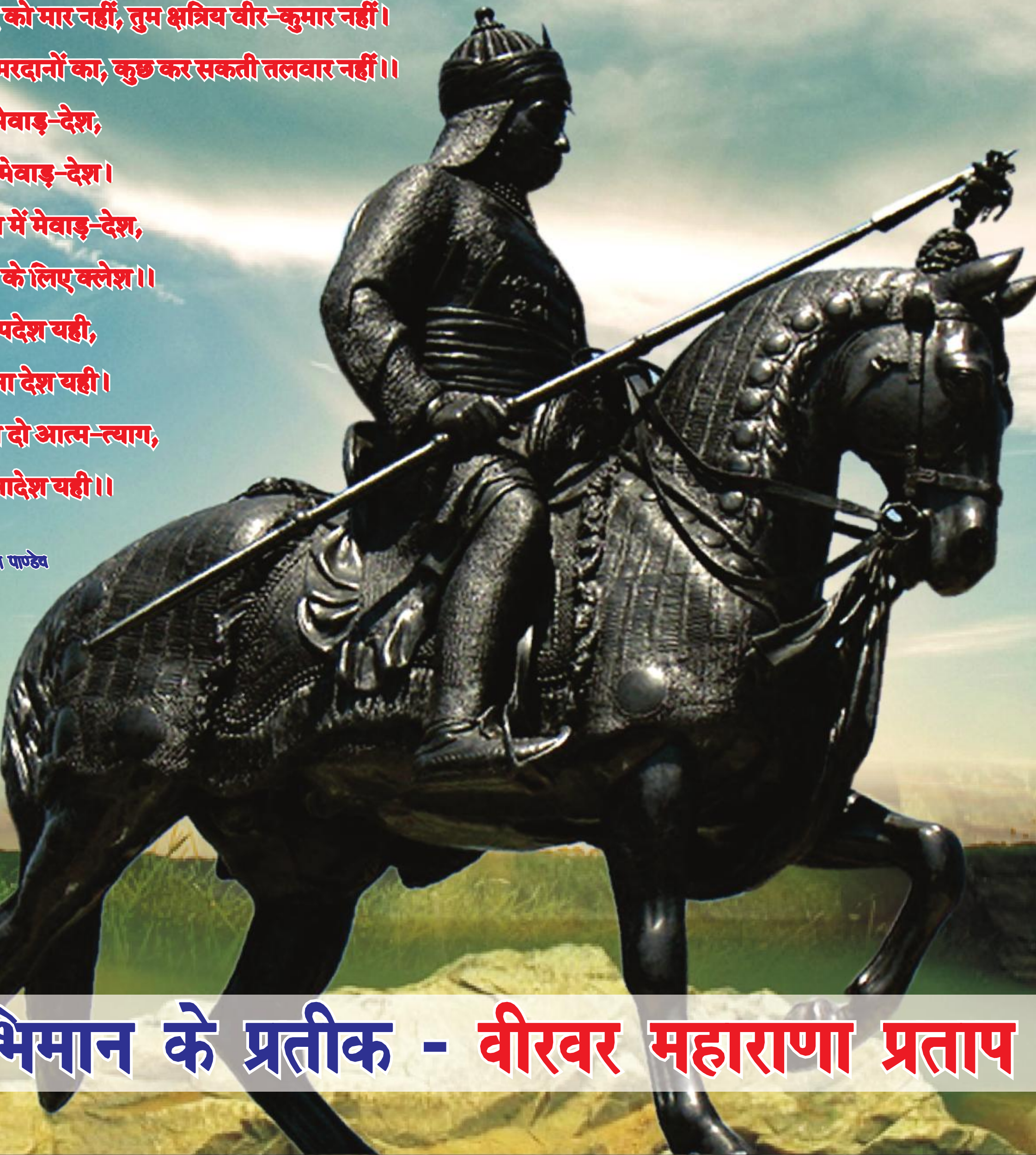

स्वाभिमान के प्रतीक - वीरवर महाराणा प्रताप

सत्यार्थ प्रकाश की शिक्षाओं को अपने आँचल में समेटे, सम्पूर्ण परिवार के लिए, हर आयु समूह के लिए, पठनीय और समर्पित

सत्यार्थ – सन्देश

प्रमुख संरक्षक – सत्यार्थ–सन्देश

महाशय धर्मपाल जी (एम.डी.एच.)
डॉ. सुखदेव चन्द सोनी (अमेरिका)

परामर्शदाता संपादक मण्डल

डॉ. महावीर मीमांसक
आचार्य वेदप्रकाश श्रोत्रिय
डॉ. ज्वलंत कुमार शास्त्री
डॉ.सोमदेव शास्त्री
डॉ. रघुवीर वेदालंकार
आचार्य वेदप्रिय शास्त्री

संपादक

अशोक आर्य

सहयोग ◆ भारत	विदेश
संरक्षक – ११००० रु.	$ 1000
आजीवन – १००० रु.	$ 250
पंचवर्षीय – ४०० रु.	$ 100
वार्षिक – १०० रु.	$ 25
एक प्रति – १० रु.	$ 5

भुगतान राशि धनादेश/चैक/ड्राफ्ट
श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास
के पक्ष में बना न्यास के पते पर भेजें।
अथवा यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया, उदयपुर
खाता संख्या : ३१०१०२०१००४१५१८
में जमा करा अवश्य सूचित करें।

सृष्टि संवत्
१९६०८५३११३
ज्येष्ठ कृष्णा द्वितीया
विक्रम संवत्
२०७१
दयानन्दाब्द
१८९

सत्यार्थ–सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार सम्बन्धित लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद के प्रतिवाद हेतु न्यायक्षेत्र उदयपुर ही होगा। आपत्ति की अवधि प्रकाशन तिथि से एक माह के भीतर ही मानी जायेगी।

SAVE THIS BEAUTY

१४ Give up meat eating

२० अंधविश्वास

२७ महाराणा प्रताप

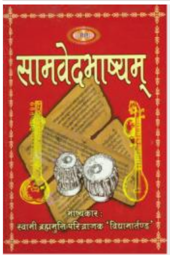

१० ← साम्नः सामत्वम्

१७ ← यश की अमर धरोहर

समाचार २४

हलचल २५

०४ वेद सुधा
०७ सामञ्जस्य
०८ अहंकार का पराभव
२२ सत्यार्थ प्रकाश पर लिखे गये व्याख्यात्मक ग्रन्थ
२६ स्मरण
३० वेद सम्मेलन

स्वामी एवं प्रकाशक "श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास" उदयपुर   मुद्रक : चौधरी ऑफसेट, (प्रा.लि.), उदयपुर

प्रकाशक

श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास
नवलखा महल, गुलाब बाग, उदयपुर (राजस्थान) ३१३००१
(०२९४) २४१७६९४ , ९३१४५३५३७९, ९८२८९२६७४७

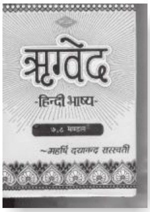

ओ३म्

वेद सुधा

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु।
शमभिषाचः शमुरातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः।। ऋग्वेद ७/३५/११

अर्थ- (नः) हम मनुष्यों के लिए (देवाः) विद्वान् लोग (विश्वदेवाः) विश्वदेव बनकर (शम् भवन्तु) कल्याणकारी हों, (सरस्वती) विद्या (धीभिः सहः) बुद्धियों के साथ (शम्) कल्याणप्रद हो। (अभिषाचः) हमारे कामों में सहायता देने वाले हमारे अनुगामीजन (शम्) कल्याणकारी हों। (रातिषाचः) हमको धन आदि सामग्री प्रदान करने वाले गुरुजन (शम्) कल्याणकारी हों।

(दिव्याः) आकाश या वायु से सम्बन्ध रखने वाले (पार्थिवाः) पृथिवि से सम्बन्ध रखने वाले (अप्याः) जल से सम्बन्ध रखने वाले, सभी पदार्थ (नः शम् भवन्तु) हमारे लिए कल्याणकारी हों।

व्याख्या- इस मन्त्र में कुछ ऐसे कल्याणकारक पदार्थों का उल्लेख है जो स्थूल रुप से कल्याणकारक होते हुए भी कुछ त्रुटियों के कारण अकल्याणकारक सिद्ध होते हैं अर्थात् किन्हीं कारणों से प्राणियों को उनके गुणों से उतना लाभ नहीं होता जितना होना चाहिए और कभी-कभी तो कल्याण के स्थान पर हानि पहुँचती है।

सबसे पहला नम्बर 'देवों' का है। देव तो वही कहलाते हैं जो जगत् को प्रकाश या दान देते हैं। ''देवो दानाद् वा दीपनाद् वा द्योतनाद् वा द्युस्थाने भवतीति वा (नि. अ. ७, खं. १५)। प्रकाश और दान के सबसे अच्छे दाता तो विद्वान् लोग होते हैं, अतः विद्वानों का नाम देव है।

परन्तु विद्वानों में एक त्रुटि हो जाए तो उनसे लाभ के स्थान में हानि भी पहुँच सकती है। वह है उनके हृदय की संकीर्णता। एक संकीर्णहृदय विद्वान् संकीर्णहृदय अविद्वान् की अपेक्षा अधिक हानिकारक सिद्ध होता है। प्रसिद्ध लोकोक्ति है कि ''साक्षराः राक्षसाः भवन्ति''। यदि विद्वान् उदार-हृदय न हों तो वे राक्षस हो जाते हैं। सुना करते हैं कि रावण बहुत विद्वान् होने पर भी राक्षस था। उसने स्वयं मनुष्य की रक्षा नहीं की अपितु सत्यपुरुषों के लिए यह आवश्यक हो गया कि उससे लोगों की रक्षा की जाए। इसलिए वेदमन्त्र में प्रार्थना की गई कि हमारे 'देव' या विद्वान् लोग 'विश्वदेव' अर्थात् विश्व का कल्याण करने वाले हों। सन्ध्या के मन्त्रों में एक प्रार्थना है- ''ओ३म् महः पुनातु हृदये'' हे प्रभो! आप महान् हैं, मेरे हृदय को पवित्र कीजिए। हृदय कैसे अपवित्र होता है? संकीर्ण होकर। **उदारता हृदय का गुण है, संकीर्णता हृदय का रोग है**। जब हम परमात्मा का 'महः' या महान् के रुप में ध्यान करेंगे तो महत्ता या उदारता का गुण हममें भी आएगा और हमारी संकीर्णता की बीमारी कम होगी। मन्त्र में 'विश्वदेवाः' शब्द है, ''विश्वेदेवाः'' नहीं। यह बात सावधानी से विचारणीय है 'विश्वदेवाः'-विश्वस्य देवाः। हमारा मिट्टी का दीपक देव है परन्तु सूर्य विश्वदेव है। हमारी माँ देव है परन्तु ईश्वर विश्वदेव है। यों तो बकरे की माँ भी उसके लिए देव है, मुर्गे की माँ भी, परन्तु उनका देवत्व अत्यन्त संकीर्ण है। कोई-कोई माता अपने बच्चे की रक्षा के लिए दूसरों के बच्चों को भी मार डालती है, बच्चों को रोगों से बचाने के लिए मूर्ख और निम्नवर्ग की माताएँ बकरी, सुअर आदि की 'बलि' देवी-देवताओं पर चढ़ाया करती हैं। वे अपने बच्चों के लिए 'देवी' होती हुई भी उन जानवरों के लिए राक्षसी हैं। वे विश्वदेव नहीं हैं। महापुरुष सदैव विश्वदेव होते हैं। वे एक व्यक्ति या समूह या एक देश को बढ़ाने के लिए दूसरों को हानि नहीं पहुँचाते। ''परोपकाराय सतां विभूतयः''- अच्छे पुरुषों की सम्पत्ति दूसरों के उपकार के लिए होती है। ''उदारचरितानां तु बसुधैव कुटुम्बकम्''- उदारचरित्र लोगों का तो विश्व ही कुटुम्ब होता है। वे विश्वदेव होते हैं। जिस दीपक को वायु का छोटा-सा झोंका भी बुझा सके उससे क्या कल्याण हो सकेगा? जो विद्वान् लोग छोटे-से प्रलोभन से विचलित हो जाते हैं, उन विद्वानों से किसी का हित नहीं होता। बहुत से विद्वान् इसलिए ही विद्या पढ़ते हैं कि अधिक-से-अधिक लोगों की आँखों में धूल डालकर अपना उल्लू सीधा कर सकें। बड़े-बड़े विद्वान् वैज्ञानिक अपने विज्ञान को, बड़े-बड़े शास्त्रज्ञ अपने शास्त्र-ज्ञान को, बड़े-बड़े व्याख्याता अपनी वक्तृत्व-शक्ति को दूसरों को हानि पहुँचाने के काम में ही लाते हैं। वे हमारे लिए क्या, किसी के लिए भी, अपने लिए भी 'शं' अर्थात् कल्याणकारक सिद्ध नहीं होते। वे बौद्धिक-राक्षस हैं और वे कम पढ़े लोगों से अधिक हानिकारक हैं। सुकरात को विष दिलाने का हेतु अथेंस का सबसे बड़ा व्याख्याता लाइकन था, परन्तु वह बड़े संकीर्ण हृदय का था। सुकरात के मित्रों ने चाहा था कि यदि उसे रिश्वत दे दी जाए तो वह अपनी वक्तृता को सुकरात के बचाव में प्रयुक्त करेगा। सुकरात ने रिश्वत देना अधर्म समझा। सुकरात को मौत का इतना डर न था जितना अधर्म का। लाइकन ने उसके विरुद्ध अभियोग लड़ा, उसे अपनी वक्तृता पर अधिक अभिमान था, अपने सदाचार तथा सत्यप्रियता पर नहीं। वह विद्वान्

और वक्ता अर्थात् 'देव' होते हुए भी विश्वदेव नहीं था। वह केवल स्वार्थदेव था, फीस का वकील था, सत्य का वकील नहीं था। वेदमन्त्र में प्रार्थना की गई है कि हमारे देव स्वार्थदेव न होकर विश्वदेव बनें। उनकी मनोवृत्ति उदार हो। वे दूर तक लोगों के हित को देख सकें। सुकरात विश्वदेव था। लाइकन स्वार्थदेव या उदरदेव था।

दूसरा नम्बर 'सरस्वती' का है। सरस्वती देवों का भूषण है। विद्या से ही तो देव बनते हैं, परन्तु कुछ विद्वान् वास्तविक विद्वान् न होकर कोरे रटन्त विद्वान् होते हैं, वे विद्या के केवल संकुचित रुप के ज्ञाता होते हैं, उनमें बुद्धि नहीं होती। बिना बुद्धि के विद्या बेकार है। फारसी के एक कवि का कहना है कि ''यक मन इल्म रा दह मन अकल बायद'' अर्थात् एक मन विद्या के लिए दस मन बुद्धि चाहिए। पचतन्त्र में मूर्ख विद्वानों की कहानी दी है कि शास्त्रज्ञ होते हुए उन्होंने शास्त्रों के वाक्यों का दुरुपयोग किया। तोते की तरह सूत्र रटनेवाले बुद्धिहीन वेदपाठी संसार को सन्मार्ग से भ्रष्ट करते हैं। यहाँ हम दो मोटे प्रसिद्ध दृष्टान्त देते हैं। अष्टाध्यायी के प्रथम चौदह प्रत्याहार सूत्रों के पीछे लिखा रहता है ''इति माहेश्वराणि''- अर्थात् ये सूत्र चौदह महेश्वर के हैं। पौराणिक पंडितों में एक कहानी प्रसिद्ध है कि शिवजी के डमरू बजाने से ये चौदह सूत्र निकले। यह विद्वानों की बेसमझी की व्याख्या है। वस्तुतः इन सूत्रों का प्रथम रचयिता कोई प्राचीन काल का महेश्वर नाम का वैयाकरण था जिसने प्रत्याहार द्वारा व्याकरण को पढ़ाने की पद्धति डाली और पीछे के वैयाकरणों ने अपनी बुद्धि द्वारा उस पद्धति को अधिक विकसित किया। जैसे फिट् सूत्रों के प्रत्याहार, पाणिनि के प्रत्याहारों से कुछ भिन्न हैं, परन्तु पद्धति दोनों की एक ही है।

दूसरा उदाहरण है अक्षपाद गोतम आचार्य का जिन्होंने न्यायदर्शन बनाया है। कहते हैं कि गोतम ने तप किया जिसके फलस्वरूप ईश्वर ने गोतम के पैरों में आँखे दे दीं और उसका नाम अक्षपाद पड़ गया। ऐसा विश्वास बुद्धिहीन पण्डितों का है। बात शायद ऐसी होगी कि विचारक लोग चलते-फिरते भी गम्भीर विचारों में मग्न रहते हैं। उनकी दृष्टि उनके पैरों से आगे नहीं जाती। वे सिर उठाकर नहीं चलते। किसी ने उनको इस प्रकार विचार-मग्न देखकर उनका नाम अक्षपाद रख दिया होगा। संसार में बहुत-से ऐसे मूर्ख विद्वान् हैं, जिनके नाश का कारण उनकी विद्या है। बुद्धिमान् थोड़ी विद्या पढ़कर जितना लाभ उठा सकता है उतना मूर्ख वेदज्ञ नहीं। अकबर में बुद्धि थी। वह बहुत पढ़ा न था। राजा रणजीतसिंह बुद्धिमान् परन्तु निरक्षर था, अतः सरस्वती को सफल बनाने के लिए ''धीभिः'' अर्थात् बुद्धियों का सहयोग आवश्यक है। बुद्धिमान् अशिक्षित भी हो तो वह मूर्ख शिक्षित से अधिक सफल हो सकेगा। कुछ लोगों का तो ऐसा अनुभव है कि वे बुद्धिमान् शत्रु को निर्बुद्धि मित्र से कम हानिकारक समझते हैं।

आगे चलकर यह प्रार्थना की गई है कि 'अभिषाच' और ''रातिषाच'' लोग हमारे लिए कल्याणकारक हों। अभिषाच और रातिषाच का क्या अर्थ है और उनमें भिन्नता क्या है? किस बात को लक्ष्य में रखकर दो भिन्न-भिन्न शब्दों का दो भिन्न-भिन्न वाक्यों में प्रयोग किया गया? यदि चेतावनी न दी जाए तो 'अभिषाच' और 'रातिषाच' कैसे हानिकारक हो सकते हैं? 'षच' धातु का अर्थ है 'सेवन' या 'सेचन'। 'अभि' उपसर्ग है। 'अभिषाच' वे लोग हैं जो हमारे अनुगामी हैं, हमारे कृत्यों में हमारी सहायता करते हैं। वे हमारा 'उपकार' करते हैं अर्थात् 'उपकारक' होते हैं। उपकारक कारक से नीचा होता है। जैसे प्रधान का सहायक उपप्रधान होता है ऐसे कारक का सहायक 'उपकारक' होता है। 'अभिषाच' भी ऐसे ही लोग हैं जो हमारे पीछे-पीछे चलते हैं और हर प्रकार से हमारे कामों में हमारी सहायता करते हैं। आजकल का एक दृष्टान्त लीजिए। राष्ट्रिय सभा के लिए एक मन्त्री का चुनाव होना है। एक योग्य प्रसिद्ध पुरुष के लिए प्रस्ताव किया गया। अब जितने उसके सहयोगी और सम्पोषक हैं वे सब मतदाता और उनके नेता उस मन्त्री के 'अभिषाच' हैं। जो मन्त्री चुना गया उस पर इन 'अभिषाचों' का ऋण है। यदि ये 'अभिषाच' भले आदमी हैं तो वे देश के हित में उसकी

पुष्टि करेंगे और यदि स्वार्थी हैं तो चुनाव में सम्पुष्टि का बदला चुकाने के लिए उसको न्याय के विरुद्ध अपनी बात मनवाने के लिए बाधित करेंगे। हर-एक कहता है कि तुम हमारे 'मत' पर मन्त्री बने हो, हमारी अमुक माँग पूरी करो अन्यथा हम तुमको काम नहीं करने देंगे। इसी प्रकार अनुगामी लोग अवसर आने पर नेता बन जाते हैं और देश की हानि होती है। एक उपासक मन्त्री ईश्वर से प्रार्थना करता है कि जिन अभिषाच जनों ने मेरा साथ दिया है वे ऐसी कल्याणकारी भावना के पुरुष हों, जो मुझे अनर्थ

कराने पर बाधित न करें।

'रातिषाच' में भी वही धातु है षच'। परन्तु 'रातिषाच' अभिषाच से भिन्न हैं। अभिषाच हमसे नीचे के लोग हैं, रातिषाच हमसे ऊपर हमारे गुरुजन हैं जो विद्या आदि धनों से हमारा उत्साह बढ़ाते हैं और हमारे कामों में जो कठिनाइयाँ हो सकती हैं उनको दूर कर सकते हैं। हमारे माता-पिता रातिषाच हैं, धनपति रातिषाच हैं, इन्हीं के दान से हम अपने शुभ कामों में आगे बढ़ सकते हैं। परन्तु जिस प्रकार 'अभिषाच' दुर्भावनाओं से प्रेरित होकर पिशाच बन सकते हैं, इसी प्रकार 'रातिषाचों' में भी यह निर्बलता आ सकती है। पौराणिक प्रह्लाद और ध्रुव के पिता ऐसे ही रातिषाच थे। वर्तमान युग के धनपति ऐसे ही रातिषाच हैं। ये अपने धन से बड़े-बड़े विद्वानों और संन्यासियों को मुट्ठी में लिए रहते हैं। समाज का विद्वद्-वर्ग इन्हीं रातिषाचों के फन्दे में पड़कर अधर्म-युक्त व्यवस्थाएँ दे डालता है। संस्थाओं को बड़े-बड़े दान देकर धनपति लोग संस्थाओं को खरीद लेते हैं, संस्थाएँ इन्हीं रातिषाचों के द्वारा बिगड़ती हैं, इसलिए रातिषाचों को कल्याणकारी बनने की आवश्यकता है। अभिषाच और रातिषाच दोनों ही नर-समाज के लिए कल्याण-पद होते हैं। इनके बिना कोई समाज उन्नति नहीं कर सकता, परन्तु इनका मर्यादित रहना भी आवश्यक है।

मन्त्र के अन्तिम भाग में प्रार्थना की गई है कि दिव्य, पार्थिव और आप्य पदार्थ हमारे लिए कल्याणकारी हों। पार्थिव=ठोस, आप्य=तरल और दिव्य=हवाई, संसार की सब चीज़ें इन तीन वर्गों में विभाजित समझी जाती हैं। जिनमें पृथिवी का अंश अधिक है वे पार्थिव हैं। जिनमें जल (आपः) का अंश अधिक है वे आप्य, तरल हैं। जिनमें द्यौ-सम्बन्धी वायु का अंश अधिक है वे दिव्य (गैसीय) पदार्थ हैं। मनुष्य का इन सबसे काम पड़ता है- थल, जल तथा गगन तीनों से और उनमें रहने वाले पदार्थों से। ये हमारे सुख के भी हेतु हैं और दुःख के भी। ईश्वर से प्रार्थना है कि ये हमारे लिए हितकर हों, अहितकर न हों। पार्थिव जड़पदार्थ, आप्य जड़पदार्थ और दिव्य जड़पदार्थ स्वयं तो न हमारे हित को समझते हैं न अहित को। पार्थिव (ठोस) पदार्थ, सोना, चाँदी, लोहा आदि हमारा हित नहीं समझते, न आप्य (तरल) जल, तेल आदि, न दिव्य धूप, चाँदनी या वायु आदि, परन्तु हमारे देव विश्वदेव हों, सरस्वती बुद्धियों द्वारा सुनीत हों, यदि हमारे अभिषाच और रातिषाच जो हमारे हितों को समझते हैं समुचित हों तो शेष सब-के-सब जड़पदार्थ हमारे लिए हितकर सिद्ध होंगे।

पार्थिव, आप्य और दिव्य का एक अर्थ हो सकता है। योगदर्शन (साधनपाद सूत्र १८) में कहा है कि ''प्रकाश-क्रिया-स्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्- अर्थात् यह दृश्य जगत् जो मनुष्य के भोग और अपवर्ग (मोक्ष) दोनों का साधक है; सत्, रजः, तमः तीन गुणों से मिश्रित है। प्रकाश सत्त्वगुण का लक्षण है, क्रिया रजोगुण का और स्थिति (ठहरा रहना या गतिशून्य होना) तमोगुण का। पार्थिव पदार्थ क्रियाशून्यता के लिए प्रसिद्ध हैं। यदि केवल पृथिवी का बस चले तो वह सब पदार्थों को क्रियाशून्य कर दे, क्योंकि पृथिवी की आकर्षण शक्ति सब चीज़ों को अपने केन्द्र की ओर खींचती है। खड़ा होना, चलना, दौड़ना आदि सभी गतियाँ पृथिवी के आकर्षण का विरोध करने से सम्भव होती हैं, अतः जितने आलसी और क्रियाहीन लोग हैं वे पार्थिव या तमोगुणी हैं। आप्य वा=तरल पदार्थ चलायमान होते हैं। पृथिवी की ओर आकर्षित होते हुए भी वे अपने चलने के लिए अवसर खोजते रहते हैं। बोतलों और घड़ों में बन्द होकर भी उनकी तरलता नष्ट नहीं होती, यह रजोगुण का लक्षण है। कुछ-न-कुछ करते रहना, कुछ काम न हो तो व्यर्थ ही दौड़ लगाना-ऐसे लोग 'आप्य' या रजोगुणी हैं। डाका डालना, लोगों को भड़काना, झगड़ों के नये-से-नये रूप आविष्कृत करना, यह आप्य लोगों का काम है; परन्तु सतोगुणी पुरुष दिव्य हैं, उनके आत्मा का प्रकाश उनका लक्षण है। वे जो कुछ करते हैं बुद्धिपूर्वक करते हैं, जन-कल्याण के लिए करते हैं। उनके सम्पर्क से रजोगुणी सतोगुणी हो जाते हैं। पौराणिक गाथा है कि वाल्मीकि डाकू थे, ऋषि बन गये। अंगुलिमाल डाकू बुद्ध भगवान् का भक्त बन गया। यह 'दिव्य' जनों का सम्पर्क था। उन्हीं के सम्पर्क से पार्थिव (आलसी, तमोगुण) रजोगुणी या सतोगुणी हो जाते हैं। सूर्य की किरणें गन्दे मूत्र पर पड़कर उसके जल को शुद्ध बनाकर बादल के रूप में बदल देती हैं। गीता के सत्रहवें अध्याय में तो सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण की कई प्रकार की व्याख्या की गई है-

यजन्ते सात्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसाः जनाः।। -गीता १७-४

सात्विक अर्थात् दिव्य लोग देवों को अपना आदर्श मानकर उनका अनुकरण करते हैं। सतोगुण-विहीन राजसी (आप्य) लोग

दौड़-धूप तो करते हैं, परन्तु राक्षसों, मनुष्यों को लूटने या धोखा देनेवालों, झूठे आन्दोलनों को चलानेवालों (तरल पदार्थ) को वे अपना आदर्श मानते हैं जिनकी गति सदा "निम्नगा" नीचे की ओर होती है। तमोगुणी लोग तो आलस्य के पुतले होते हैं; वे प्रेत अर्थात् मरे हुए, भूत अर्थात् गुज़रे हुए लोगों का ही नाम लेते हैं। वे तो पुराने लोगों का नाम ही रटते रहते हैं। सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी तप का उल्लेख करते हुए गीता (अ. १७, श्लोक १७, १८, १९) कहती है-

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत् त्रिविधं नरैः।
अफलांकक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते।।
सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्।।
मूढग्राहेणात्मनो यत् पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत् तामसमुदाहृतम्।।

यहाँ 'श्रद्धा' दिव्य है। दम्भ आदि (चलम् अध्रुवं) डाँवाडोल रहना 'आप्य' (तरल) है और मूढ़ता 'पार्थिव' है। सभ्य, सुसंस्कृत और शान्ति के उत्सुक समाज का ऐसा प्रभाव होना चाहिए कि पार्थिवों में आप्यता आये, आप्यों में दिव्यता और दिव्यों में विश्व-दिव्यता।

पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय एम.ए
(वेद प्रवचन से साभार)

❑❑❑

पूरी करें हर कामना।
कड़ी मेहनत
सुन्दर भावना।।
सत्यार्थ-सन्देश घर-घर पहुँचावें
कर्मयोगी महाशय धर्मपाल
अध्यक्ष - न्यास

गृहस्थ जीवन में
सामञ्जस्य

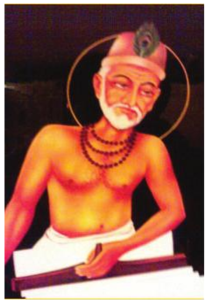

संत कबीर रोज सत्संग किया करते थे। दूर-दूर से लोग उनकी बात सुनने आते थे। एक दिन सत्संग खत्म होने पर भी एक आदमी बैठा ही रहा। कबीर ने इसका कारण पूछा तो वह बोला, मुझे आपसे कुछ पूछना है। मैं गृहस्थ हूँ, घर में सभी लोगों से मेरा झगड़ा होता रहता है। मैं जानना चाहता हूँ कि मेरे यहाँ गृहक्लेश क्यों होता है और वह कैसे दूर हो सकता है?

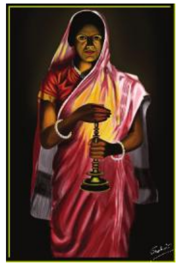

कबीर थोड़ी देर चुप रहे, फिर उन्होंने अपनी पत्नी से कहा, लालटेन जलाकर लाओ। कबीर की पत्नी लालटेन जलाकर ले आई। वह आदमी भौंचक देखता रहा। सोचने लगा इतनी दोपहर में कबीर ने लालटेन क्यों मँगाई। थोड़ी देर बाद कबीर बोले, कुछ मीठा दे जाना। इस बार उनकी पत्नी मीठे के बजाय नमकीन देकर चली गई। उस आदमी ने सोचा कि यह तो शायद पागलों का घर है। मीठे के बदले नमकीन, दिन में लालटेन। वह बोला, कबीर जी मैं चलता हूँ।

कबीर ने पूछा, आपको अपनी समस्या का समाधान मिला या अभी कुछ संशय बाकी है? वह व्यक्ति बोला, मेरी समझ में कुछ नहीं आया। कबीर ने कहा, जैसे मैंने लालटेन मँगवाई तो मेरी घरवाली कह सकती थी कि तुम क्या सठिया गए हो। इतनी दोपहर में लालटेन की क्या जरूरत? लेकिन नहीं, उसने सोचा कि जरूर किसी काम के लिए लालटेन मँगवाई होगी। मीठा मँगवाया तो नमकीन देकर चली गई। हो सकता है घर में कोई मीठी वस्तु न हो। यह सोचकर मैं चुप रहा। इसमें तकरार क्या? आपसी विश्वास बढ़ाने और तकरार में न फँसने से विषम परिस्थिति अपने आप दूर हो गई। उस आदमी को हैरानी हुई। वह समझ गया कि कबीर ने यह सब उसे बताने के लिए किया था। कबीर ने फिर कहा, गृहस्थी में आपसी विश्वास से ही तालमेल बनता है। आदमी से गलती हो तो औरत सँभाल ले और औरत से कोई त्रुटि हो जाए तो पति उसे नजरअंदाज कर दे। यही गृहस्थी का मूल मंत्र है।

संकलन - रमेश चंद्र

अहंकार का पराभव

अहंकार का पराभव तो होता ही है । हर ऊँट के लिए कोई न कोई और कभी न कभी, कोई पहाड़ आता ही है । प्रसिद्द कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने लिखा है-

मैं घमंडों में भरा ऐंठा हुआ, एक दिन जो था मुंडेरे पर खड़ा।
आ अचानक दूर से उड़ता हुआ, एक तिनका आँख में मेरी पड़ा।।
मैं झिझक उठा, हुआ बेचैन सा, लाल होकर आँख भी दुखने लगी।
मूँठ देने लोग कपड़ों की लगे, ऐंठ बेचारी दबे पाँवों भगी।।
जब किसी ढंग से निकल तिनका गया, तब समझ ने यों मुझे ताने दिए।
ऐंठता तू किसलिए इतना रहा, एक तिनका है बहुत तेरे लिए।।

पर प्राय अहंकारी ऐसे सोचता नहीं । सोच ले तो फिर बात ही क्या है। यह अहंकार ऐसा असाध्य रोग है कि उसे वह पहाड़ भी अपने से नीचे दिखायी देता है । यहीं से कुतर्क जन्म लेता है। येन केन प्रकारेण वह अपने को सही सिद्ध करने में जुट जाता है। इसी मानसिकता को महर्षि दयानन्द ने अपने महान् ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में इस प्रकार निरूपित किया है। 'जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता (सत्यार्थ प्रकाश पृ. ४)।

जैसा कि महर्षि लिखते हैं कि मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है (सत्यार्थ प्रकाश पृ. ४) ठीक यही स्थिति अहंकारी की होती है वह अपने आत्मा में अपने कृत्यों की दुष्टता से परिचित होता है, पर सत्य को न स्वीकार कर आत्म हनन करता है। यजुर्वेद के ४० वें अध्याय के मंत्र ३ में स्पष्ट कहा है-

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता । ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।।
अहंकार में डूबे व्यक्ति की मानसिकता महाभारत के दुर्योधन की भाँति होती है-
'जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति, जानामि अधर्मं न च मे निवृत्ति ।'

यह निवृत्ति क्यों नहीं होती ? इसलिए कि इसके लिए सत्य को स्वीकार करना पड़ेगा अर्थात् यह स्वीकार करना पड़ेगा कि वह अब तक गलत था और यही बात उसे कतई स्वीकार नही, चाहे कुल, समाज, राष्ट्र कुछ भी क्यों न नष्ट हो जाय । आदमी का अहंकार उसको दृष्टि से अंधा, मति से भ्रमपूर्ण बना देता है । अच्छे-अच्छे समझदार लोग अहंकार के कारण गलत निर्णय ले लेते हैं । अहंकारी व्यक्ति हर वो काम करना चाहता है, जिससे उसके अहंकार को और बल मिले । स्थितियों से निबटने से ज्यादा उसकी रुचि अपनी अहंकारपूर्ण प्रतिष्ठा में रहती है । उसके कृत्य से परिवार, समाज, समुदाय अथवा राष्ट्र को कितनी हानि पहुँच रही है अथवा संभावित है, यह चिंतन वह नहीं करता ।

कंस का भी यही हाल था और दुर्योधन के अहंकार से ही महाभारत ने जन्म लिया था , जिसमें १८ अक्षौहिणी सेना, विद्वान्, नीतिज्ञ और पूरा कुल विनष्ट हो गया। अहंकार के मद में चूर व्यक्ति की दशा वही होती है जैसी कि उस मनुष्य की जो यह जानता है कि जिस प्रकार मृत्यु अवश्यम्भावी है, परन्तु वह काल के क्रूर हाथों से सुरक्षित रहेगा , वैसे ही उसके अहंकार का दुष्परिणाम उसे ज्ञात है कि अहंकारजन्य दुष्कृत्यों की माफी समाज में नहीं होती, उसे देर से ही सही आइना दिखाने वाला मिल ही जाता है, इस बात का साक्षी इतिहास है, पर अहंकारी यही सोचता ही कि वह सही है, अन्य सब गलत हैं, अल्पज्ञ हैं। यह साबित करने के लिए वह औरों के चरित्र-हनन के प्रयास में जुट जाता है । यहाँ तुलसी दास जी को उद्धृत करना समीचीन होगा -

तुलसी' जे कीरति चहहिं, पर की कीरति खोइ। तिनके मुँह मसि लागहैं, मिटिहि न मरिहै धोइ।।

''दूसरों की निंदा कर स्वयं प्रतिष्ठा पाने का विचार ही मूर्खतापूर्ण है। दूसरे को बदनाम कर अपनी तारीफ गाने वालों के मुँह पर ऐसी कालिख लगेगी जिसे कितना भी धोया जाये मिट नहीं सकती।''

तनु गुन धन महिमा धरम, तेहि बिनु जेहि अभियान। तुलसी जिअत बिडम्बना, परिनामहु गत जान।।

"सौंदर्य, सद्गुण, धन, प्रतिष्ठा और धर्म भाव न होने पर भी जिनको अहंकार है उनका जीवन ही बिडम्बना से भरा है। उनकी गत भी बुरी होती है।" उसकी ऐसी सोच बनाने में ठकुरसुहाती बातें कहने वाले अनुगामी चाटुकार भी जिम्मेदार हैं जो हर समय हर पल उसे सही रास्ते पर होने का विश्वास दिलाते रहते हैं।

महर्षि दयानंद ने लिखा है-

"इस संसार में दूसरे को निरंतर प्रसन्न करने के लिए प्रिय बोलने वाले प्रशंसक लोग बहुत हैं, परन्तु सुनने में अप्रिय विदित हो और वह कल्याण करने वाला वचन हो, उसका कहने और सुनने वाला पुरुष दुर्लभ है। क्योंकि सत्पुरुषों को योग्य है कि मुख के सामने दूसरे का दोष कहना और अपना दोष सुनना, परोक्ष में दूसरे के गुण सदा कहना ।और दुष्टों की यही रीति है कि सम्मुख में गुण कहना और परोक्ष में दोषों का प्रकाश करना ।जब तक मनुष्य दूसरे से अपने दोष नहीं सुनता वा कहने वाला नहीं कहता, तब तक मनुष्य दोषों से छूटकर गुणी नहीं हो सकता।" (सत्यार्थप्रकाश पृ.९७)

सत्ता के केन्द्र में स्थित व्यक्ति को ऐसे चाटुकार सदैव आसानी से उपलब्ध भी हो जाते हैं ।कर्ण, शकुनि, दुःशासन सदैव दुर्योधन के गलत कार्यों का समर्थन करते रहे। केवल विदुर ऐसे व्यक्ति थे जो खुलकर सत्य का प्रगटन करते रहे, परन्तु सत्याग्रही का ऐसी मंडली के समक्ष कोई मूल्य नहीं होता और वे अपमान और तिरस्कार ही प्राप्त करते हैं ।ऐसे कानों को केवल महिमा-गान सुनने की आदत पड़ जाती है ।बिभीषण ने भी सीता-हरण को अनुचित और अनैतिक बताते हुए जब राम से क्षमा माँगने का सत्परामर्श दिया तो रावण ने उन्हें लात मारकर बाहर का रास्ता दिखा दिया ।वस्तुत अहंकार-ग्रस्त अंधे को दिखायी नहीं देता कि स्वार्थी लोगों की मंडली क्यों उसके दुष्कृत्य का समर्थन कर रही है? उसका विवेक ऐसे मनन को कुंद कर देता है। वह उन्हें सच्चा हितैषी मान लेता है ।मंदोदरी तक का परामर्श रावण को नहीं सुहाता ।अप्रिय परिणाम की संभावना भी उनके कदम नहीं रोक पाती ।

ऐसी स्थिति, जो समाज को नष्ट -भ्रष्ट कर देती है इसके प्रवर्त्तन के लिए समाज के कर्णधार अपनी जिम्मेदारी से नहीं बच सकते ।इतिहास उनके अपराध को छिपा नहीं सकता ।द्रौपदी भरी सभा में रो-रोकर प्रश्न कर रही है कि जो कुछ उसके साथ किया जा रहा है क्या वह धर्म है? भीष्म, द्रोण, कृप, सब गर्दन नीचे किये चुप हैं , द्रौपदी को अपमानित करने का घृणित प्रयास किया जा रहा है ।केवल विदुर प्रतिरोध करते हैं पर उनकी सुनता कौन है ? पश्चात् भीष्म बोलते भी हैं तो उस नाजुक अवसर पर धर्म की सूक्ष्म गति समझाने का प्रयास करते हैं ।काश भीष्म ने उस दिन अपना कर्त्तव्य निभाया होता तो महाभारत का ऐसा विनाशकारी युद्ध नहीं होता जिसने प्यारे देश को सहस्रों वर्ष पीछे धकेल दिया ।भीष्म की इस अकर्मण्यता को क्या इतिहास विस्मृत कर देगा? कभी नहीं ।

अगर ये समर्थ-जन समय रहते अपने दायित्व का निर्वहन करते रहते तो विनाश रुक सकता था ।फिर भी यह भी ध्रुव सत्य है कि अहंकार का और अहंकारी के मद का विनाश होता ही है। उत्तर-प्रदेश की जनता ने विधान सभा चुनावों में यही रेखांकित किया है । मायावती का पतन अहंकार का पराभव है ।एक महिला के शासन काल में महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों की आवाज उस तक नही पहुँचती है ।अपने बंगले में अपने आप को महारानी के रूप में स्थापित कर और स्वयं सदैव इस अहसास को जीवित रखने के लिए आई.पी.एस. अफसर से जूतियाँ साफ करवाकर, विधायकों की जी हजूरी सुनिश्चित करने हेतु अपने सामने आसन पर बैठने का अधिकार न दे , भ्रष्टाचार की बहती नदी से आँखे फेर, समर्थन कर , जिस प्रांत में भुखमरी बेमिसाल हो वहाँ महारानी की भाँति ही जन्मदिन मनाकर अपनी प्रतिमाएँ बनवाकर अपने अहं को तुष्ट करना ही जिसने उचित समझा, आखिर जनता ने उसे आइना दिखा ही दिया। बहिन जी को समझ नहीं आया , जी हजूरिये तो 'सब ठीक है' का नारा लगा रहे थे , फिर हाथी भूखा क्यों रह गया ? एक ही उत्तर है सच से मुख मोड़ लेना ।घोटालों की नदी बह रही है, जाँच के दौरान कई जिम्मेदार अफसरों की संदिग्ध मृत्यु हो जाती है , पर 'सब ठीक है' के शोर में सत्य दब जाता है ।चुनाव पास आ गए , अब पसीना आया , दर्जनों दागी मंत्रियों को निकाल दिया। पर जनता सब समझती है ।जो कार्य समय पर न हो वह न हुआ जैसा ही है ।सत्ता मदकारी होती है यह तो ठीक है , पर जो अपने कर्त्तव्यों, वायदों को अधिकारों से ऊपर रखता है वही सफल होता है अन्यथा तो अहंकार के परिणाम से कौन परिचित नहीं है?

अशोक आर्य

०९३१४२३५१०१, ०९००१३३६८३६

❑❑❑

साम्नः सामत्वम्

प्रसिद्ध वैदिक विद्वान्

आचार्य वेद प्रकाश श्रोत्रिय

पाश्चात्य विद्वानों का यह मत है कि अठारह सौ पचहत्तर मंत्रों में केवल बहत्तर मंत्र ही सामवेद के हैं। शेष मंत्र ऋग्वेद के ही हैं। सामवेद में उनका संग्रहमात्र है।

हम इस तथ्य की परीक्षा करना चाहते हैं कि वास्तविकता क्या है? वे मंत्र सामवेद के अथवा ऋग्वेद के हैं। एतदर्थ हम ऋग्वेद के कुछ ऐसे मंत्र प्रमाण रूप से उपस्थित करते हैं जिससे यह सिद्ध हो जाता है कि ऋग्वेद के समय में भी सामवेद की स्वतंत्र सत्ता वर्तमान है। यथा–

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।	ऋ.१० ।९० ।९
यो जागार तमु सामानि यन्ति।	ऋ.५ ।४४ ।१४
यज्ञन्यं सामगामुक्थ शासम्।	ऋ.१० ।१०७ ।६
श्रवत्साम गीयमानम्।	ऋ ८ ।८१ ।५
अङ्गरिसां सामभिः स्तूयमानाः।	ऋ. १ ।१०७ ।२
अर्चन्त एके महि साम मन्वत।	ऋ.१० ।३६ ।५

इन मंत्रपदों से यह निर्भ्रान्त सिद्ध है कि ऋग्वेद के समय में ही सामवेद की स्वतंत्र सत्ता है,नहीं तो सामानि, सामगाम्, सामसामभिः इन पदों का क्या प्रयोग प्रयोजन है। इतना ही नहीं गायत्रम्, त्रैष्टुभम्, जागतम्, बृहत्, रथन्तरम् इत्यादि विशेष गानों के नाम भी हैं।

इन प्रमाणों के रहते यह कहने का साहस कोई नहीं कर सकता कि सामवेद ऋग्वेद के मंत्रों का संग्रह मात्र है। अथवा 'दुनिया की लाइब्रेरी में सबसे प्रथम ऋग्वेद ही है।' इन दोनों भ्रष्ट मान्यताओं का समूल खण्डन हो जाता है। अतः यह सिद्ध हुआ कि जितना प्राचीन ऋग्वेद है उतना ही सामवेद।

ऋग्वेद और भाषा विज्ञान

भाषा विज्ञान के आधार पर पाश्चात्य और तदनुवर्ती विद्वान् यह कहते हैं कि 'ऋग्वेद की भाषा ही कुछ ऐसी पुरानी और जटिल है जिससे विवश होकर कहना पड़ता है कि सब वेदों में पुराना ऋग्वेद है। इस विषयक भाषा विज्ञानियों का सिद्धान्त है कि जहाँ तक कृत्रिमता का सम्बन्ध है वे सब पद,वाक्य या मंत्र नए हैं और जहाँ तक स्वाभाविकता का सम्बन्ध है वे सब पद,वाक्य और मंत्र पुराने हैं। अतः इस सिद्धान्त के अनुसार ऋग्वेद पुराना और सामवेद नया है। यह उक्ति कहाँ तक सत्य है? कुछ सामवेद और ऋग्वेद पाठ तुलनात्मक दृष्टि रखकर देखते हैं।

	सामवेद	ऋग्वेद
१.	आसीदत्तु वर्हिषो मित्रो	आसीदन्तु वर्हिषो मित्रो
२.	शुक्रा वियन्तु	शुक्रा वयन्तु
३.	सतः सुदक्ष धनिव ५५१/५७४	सुतःसुदक्षधन्व ९ ।१०५ ।४
४.	दिविसद्। ६७२	दिविषद्
५.	ये माणः । ७०२	ये मानः । ९ ।७५ ।३
६.	विराजसे। ७०२	विराजति। ९ ।७५ ।३

७. सुद्रुवम् २३८ सुद्रवम्। ७।३२।२०

सामवेद और ऋग्वेद में पाठ-भेद स्पष्ट प्रतीत है। प्रथम मन्त्रांश में 'आसीदतु' साम पाठ में एकवचन की जगह बहुवचन होना चाहिए था- सो ऋग्वेद में है। यह साम का पाठ तब का है,जब एकवचन और बहुवचन का विचार भी नहीं था। इसी प्रकार साम के वियत्तु का अर्थ भाष्यकारों ने वयन्तु ही किया है अतः ऋग्वेद में वयन्तु ही पाठ है। 'ये माणः' इस साम पाठ में भी वही बात है कि उस समय 'न' और 'ण' का ज्ञान नहीं था। अयुक्त सामपाठ को ऋग्वेद में ठीक कर दिया गया।

'धनिव' साम पाठ- धातु पाठ की दृष्टि से 'धन्व' होना चाहिए जो बाद में ऋग्वेद में धन्व कर दिया गया।

दिविसद् साम पाठ में भी दन्त सकार पाठ गलत होने के कारण व्याकरणानुसार मूर्धन्य सकार कर दिया गया। उस समय कौनसा सकार होना चाहिए था,यह ज्ञान ही नहीं था।

साम के 'विराजसे' पाठ पर दृष्टि डालने से यही प्रतीत होता है कि प्रथम पुरुष का पाठ ही युक्ति युक्त है जो ऋग्वेद में उपलब्ध है। इसी प्रकार 'सुद्रवम्' यह पाठ साम का उच्चारण की दृष्टि से सीधा और सरल है,इसलिए अकृत्रिम है किन्तु ऋक् पाठ में सीधा यण् कर दिया गया जो व्याकरण की आँख से अच्छा लगता है।

इन पाठों के विवेचन से तो यह निष्कर्ष निकलता है कि सामवेद पुराना है और ऋग्वेद नया है। यदि भाषा विज्ञानियों का यह सिद्धान्त सही है तो। नब्बे प्रतिशत पाठ लगभग ऐसे ही हैं जो ऊपर ऋग्वेद और सामवेद सम्बन्ध में प्रदर्शित किए गए हैं।

अब इसके विपरीत कुछ ऐसे ऋग्वेद के भी पाठ भी हैं। जो साम से पुराने लगते हैं।

	ऋग्वेद	सामवेद
१.	पवाते ९।९७।४	पवताम् ५३५
२.	सीदाति ९।९७।४	सीदताम् ५३५
३.	ऋता ९। ९७।३७	ऋतम् १३५७
४.	दीयति ९।३।१	दीयते। १२५६

ये स्थलीपुलाक न्याय से केवल चार ही उदाहरण उपस्थित किए हैं। न्याय की तुला पर तौलने से ऐसा लगता है कि ऋग्वेद के पाठों का अर्थ ही साम कर रहे हैं। जब ऋग्वेद में आये हुए पदों का ही वे साम के पद अर्थ कर रहे हैं तब तो किसी प्रकार का संदेह करने का अवकाश ही नहीं मिलता कि साम के पाठ नए तथा ऋक् के पाठ पुराने नहीं हैं।

इस प्रकार दोनों वेदों के पाठों की तुला पर रखकर तुलना की, तो यह मालूम हुआ कि इस प्रकार के एकांगी विचारों के आधार पर कोई विचारक अपना दृष्टिकोण स्थिर करे तो वह धोखा खा जावेगा। अतःइस प्रकार के विचार भ्रान्त तथा अनुशीलन करने योग्य नहीं हैं।

इस प्रकार सिद्ध हो जाता है कि दोनों वेदों के पाठ पुराने और समकालीन हैं तो फिर पाश्चात्य विद्वान् तथा उनको गुरु मानकर चलने वाले भारतीय विद्वानों ने यह साहस कैसे किया है कि दुनिया की लाइब्रेरी में सबसे प्रथम पुस्तक ऋग्वेद है। हमारा यह विश्वास है कि इन महानुभावों ने कभी भी सामवेद पढ़ने का कष्ट ही नहीं किया है। पढ़ा है तो शाब्दिक दृष्टि से ही पढ़ा है,समझने की चेष्टा नहीं की है। अथवा इसकी गहनता ही समझ में नहीं आई। अब हम भाषा-भेद से सामवेद की भिन्नता सिद्ध करने के पश्चात् दूसरी दृष्टि से सामवेद ऋग्वेद से भिन्न है, विचार करते हैं, वह है दोनो वेदों का स्वर-भेद। जो एकदम सम्पूर्ण ऋग्वेद से जो दश मण्डलों में विद्यमान है तथा सामवेद का जो पूर्वार्च्चिक और उत्तरार्च्चिक रूप से दो भागों में विभक्त है, एकदम पृथक् करती है अथवा यों कह सकते हैं जो सामवेद और ऋग्वेद का सम्पर्क भी अलग करता है। यह प्रयास केवल विद्वानों के विचारार्थ प्रस्तुत है। आप सब जानते हैं कि स्वरभेद, अर्थभेद का नियामक है। अब इस विषय पर कोई मतभेद नहीं है। अर्थभेद होने से विषयभेद के साथ ही सत्ताभेद भी सिद्ध होने में जरा सा भी सन्देह नहीं रह जाता है।

कुछ लोगों का विचार है कि दोनों वेदों में स्वरभेद नहीं है। लेकिन अभी तक वे विचारे यह नहीं जान पाए वा सोचा भी नहीं होगा कि दोनों वेदों में स्वरभेद भी है। ऐसे अभिज्ञ विद्वानों की बुद्धियाँ जल्दी सुधर जावें तो अच्छा है, अन्यथा अति अनिष्टकारी ही है।

उदाहरण प्रस्तुत करने से पहले कुछ जान लेना आवश्यक है जो विषय के ज्ञान में सहायक हो सके। जैसे-सामवेद के मन्त्रों के ऊपर जो १।२।३ इस प्रकार के अंक पाये जाते हैं,यही उदात्त,स्वरित और अनुदात्त के संकेत हैं। अर्थात् एक का अंक उदात्त,दो स्वरित तथा तीन का अंक अनुदात्त को कहता है। ऋग्वेद में 'इन्द्रो भद्राय' इत्यादि मंत्रों के ऊपर तथा नीचे दो प्रकार की लकीरें दीखती है। ऊपर की स्वरित तथा नीचे की अनुदात्त लकीरें हैं,उदात्त का चिह्न कोई नहीं है। अब हम सामवेद के प्रारम्भ से प्रथम पाँच मंत्र लेते हैं फिर ऋग्वेद के मंत्रों से तुलना करने पर यह बात समझ में आ जावेगी कि इन दोनों में स्वर भेद कैसे हैं?

	सामवेद	ऋग्वेद
१.	अग्ने आयाहि	अग्न आयाहि ६।१६।१०
२.	त्वमग्ने यज्ञानाम्	त्वमग्ने यज्ञानाम् ६।१६।१
३.	अग्निं दूतम्	अग्निं दूतम् १।१२।१
४.	अग्निर्वृत्राणि	अग्निर्वृत्राणि ६।१६।३४
५.	अग्ने रथन्न वेद्यम्	अग्निं रथन्न वेद्यम् ८।८४।१

स्पष्टीकरण

१. सामवेद के 'अग्ने' पद के ऊपर स्वरित का चिह्न है जबकि ऋग्वेद के 'अग्ने' पद के अकार पर स्वरित का चिह्न नहीं है।

२. दूसरे मंत्र के 'यज्ञानाम्' इस पद के 'ज्ञा' पर सामवेद में स्वरित का चिह्न है जबकि ऋग्वेद के मंत्र के 'ज्ञा' पर कोई चिह्न नहीं है। इसलिए ऋग्वेद में यह अक्षर उदात्त है और साम में स्वरित है।

३. साम के 'अग्निम्' पद के 'ग्नि' पर स्वरित का चिह्न है जबकि ऋक् के 'ग्नि' पर चिह्न रहित होने से उदात्त है।

४. चौथे मन्त्र के 'अग्नि' पद के 'ग्नि' पर साम में स्वरित है जबकि ऋक् में वह उदात्त है।

५. सामवेद में 'अग्ने' पद पर सम्बोधन है। ऋग्वेद में द्वितीयान्त है।

इस प्रकार दोनों वेदों में स्वरों का महान् भेद है। स्वरभेद होने से अर्थभेद है और अर्थभेद होने से विषयभेद एवं स्वातन्त्र्य भेद भी स्वतः सिद्ध है। ऐसी अवस्था में यह कहना कि सामवेद केवल ऋग्वेद का संग्रह मात्र है, कितनी भयंकर भूल है। यह स्वरभेद नहीं मानने से हुई भूल है। जो अमान्य है।

विशेष ध्यातव्यः यह है कि 'अग्ने रथन्नवेद्यम्' जो पाँचवाँ उदाहरण है- जब सामवेद में देखते हैं तो सम्बोधनान्त 'अग्न' पद का अर्थ होगा 'हे अग्ने' तथा ऋग्वेद के'अग्निं ' द्वितीयान्त पद का अर्थ होगा 'अग्नि को'।

अब सोचिए 'हे अग्ने' और 'अग्नि को' दोनों अर्थ समान नहीं हो सकते। एक पद प्रत्यक्ष अर्थ की अनुभूति करा रहा है तो द्वितीय परोक्ष अर्थ की ओर संकेत कर रहा है। अब भी अटक से कटक की दूरी की तरह भेद प्रतीत होने पर भी कोई मस्तिष्क की गुलामी से इस अर्थ-भेद को न देख पाये तो इसमें मन्त्रदोष तो है नहीं।

परिणाम

हमने उपरोक्त विवेचना से यह सिद्ध कर दिया है कि विषय,पाठ,भाषा,स्वरभेद से सामवेद के १८७५ मंत्र अपने आप में स्वतंत्र हैं। फिर भी कुछ लोग युक्त्याभास से कहते हैं कि 'ऋच्यध्यूढं साम गीयते' अर्थात् ऋग्वेद के आश्रय से ही सामवेद की सत्ता है। पैनी दृष्टि से यदि देखें तो यह कथन भी निर्मूल है। विश्वास योग्य नहीं है।

सर्वप्रथम हम यह देखते हैं कि ऋचा क्या है?

सा ऋक्-मन्त्रार्थवशेन पादव्यवस्था। (२।१।३५) मीमांसा अर्थात् अर्थ के आधीन जिसके पाद की व्यवस्था की जाए,वह ऋचा है। भाव यह है कि छन्दोबद्ध मंत्र ऋचा है। गान विद्या के जानने वाले जानते हैं कि गान पद्य में ही होता है,गद्यरूप में नहीं। जब गान है तो उसका पद्य से सम्बन्ध तो होगा ही।

सामवेद के 'गाये सहस्रवर्तनि' मंत्र के आधार पर शबर स्वामी ने साम के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि-

'सामवेदे सहस्रगीत्युपायाः। आह,कतमेते गीत्युपाया नाम?गीतिनमि क्रिया आभ्यन्तरप्रयत्नजन्या स्वर विशेषेणामभिव्यंजिका साम शब्दाभिलप्या। सा नियत प्रमाणायां ऋचि।

अर्थात् – सामवेद में एक हजार गान के उपाय हैं। प्रश्न- वे कौन हैं। उत्तर- भीतरी प्रयत्न से उत्पन्न होने वाली और विशेष स्वरों का प्रकाश करने वाली गीति या गान ही साम है और वह नियत या पादबद्ध अथवा छन्दोबद्ध ऋचा में ही उत्पन्न होता है अथवा उसी से बनता है। शबर स्वामी के शब्दों से यह बात स्पष्ट हो गई कि सामगान छन्दोबद्ध ऋचाओं से बनते हैं न कि ऋग्वेद से। ऋग्वेद और चीज है और ऋचाएँ भिन्न वस्तु हैं। छन्द और गान का नित्य सम्बन्ध है। इसलिए गान भी गाने योग्य मन्त्रों से ही बन सकते हैं।

पूछा कि सामवेद क्या है?तो छान्दोग्य उत्तर देता है कि 'या ऋक् तत्साम'(छा.उ.१।३।४), जो ऋचा है वह साम है। और ऋचा वाणी का रस है,ऋच का साम रस है और साम का उद्गीथरस है। कहा भी है-'वाचः ऋग्रसः ऋचः सामरसः,साम्नः उद्गीथोरसः(छा.उ.१।१।२)

ऋचा और साम सम्बन्ध अथर्व०१४।२।७, एतरेय ब्रा.८।२७, बृ. उ. ६।४।२० में इस प्रकार कहा है-

अमोऽहमस्मि सा त्वं,सामाहमस्मि ऋक् त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं ताविह संभवाव, प्रजामाजनयावहै।

अर्थात् अहं=मैं अम संज्ञक पतिरूप हूँ। तुम ऋग्रूपा पत्नी हो। अर्थात् दोनों का दम्पतित्व विद्यमान है। वृहदारण्यकउपनिषद् १।३।२२ में निर्वचन भी दर्शाया गया है-यथा

सा च अमश्चेति तत्साम्नः सामत्वम्(बृ.उ.) अर्थात् सा नाम ऋक् तयासह सम्बद्धः अमो नाम स्वरः षडजर्षभादितानरुपोयत्र वर्तते,तत्सामेति। अर्थात् सा नाम ऋचा है,उस ऋचा के जो अम=स्वर सम्बद्ध है,गाने के लिए वही साम है। साम का विशेषत्व उसके गान रूप से ही सूचित होता है। साम का स्वर ही उसका निज रूप है। कहा भी है-

तस्य हैतस्य साम्नो यः स्वं वेद,भवति हास्य स्वं,तस्य स्वर एव स्वम्। (बृ.उ.१।३।२५)। साम का स्वर मण्डलव्या है,यह नारद खोलता है-

सप्त स्वराः,भयोग्रामाः,मूर्च्छनास्त्वेकविंशति। तानाएकोनपञ्चाशित् इत्येतत्स्वरमण्डलम्। (नारदीय शिक्षा)

अब यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया है कि सामवेद के १८७५ मंत्र ही हैं। जो लोग यह कहते है कि ऋग्वेद का संग्रह मात्र है उसका तो निरास किया जा चुका है।

अब द्वितीय दोष और आरोपित किया जाता है कि कुछ मंत्र पुनरुक्त हैं केवल आवृत्ति मात्र हैं,उनका दूसरा अभिप्राय हो ही नहीं सकता । इस विचार का दुष्परिणाम यह सामने आया कि ७२ मंत्रों का सामवेद प्रकाशित हुआ। इस विषय में एक ही प्रबल प्रमाण देकर पुनरुक्त दोष आरोपित करने वालों का समाधान कर देना चाहते हैं। वैयाकरण जानते हैं कि पाणिनि ने एक ही सूत्र लिखा है जिसके आकार, प्रकार, अक्षर या मात्रा में जरा सा भी भेद नहीं है-यथा।

बहुलं छन्दसि। यह सूत्र अष्टाध्यायी में २।४।७३,५।२।१२२,७।१।८,७।१।१०३,७।४।७८,२।४।३९,३।२।८८,६।१।३४,७।१।१०,७।३।९७ में प्रयोग हुआ है।

ऋषि ने इन सूत्रों को भिन्न-भिन्न अर्थ की सिद्धि के प्रयोजन से बनाया है- जैसे २।४।३९का सूत्र वेद में विकल्प से अद् धातु घस्लृ आदेश करता है। २।४।७३ का सूत्र अदादिगण के नियम से प्राप्त शप् के लुक् का परिवर्तन कर देता है। २।४।७६ का सूत्र जुहोत्यादि गण के श्लु के नियम का परिवर्तन कर देता है। ३।२।८८ का सूत्र क्विप् प्रत्यय के नियम का परिवर्तन करता है। ५।२।१२२ का सूत्र विनि प्रत्यय के नियम का परिवर्तन कर देता है। इस प्रकार सूत्र एक है फिर भी इनके अर्थ और प्रयोजन भिन्न भिन्न हैं।

अब कल्पना कीजिए इनमें से एक सूत्र को छोड़कर शेष सब सूत्रों को अष्टाध्यायी में से छाँटकर निकाल दें तो कितनी भयंकर भूल होगी। मित्रो उससे कहीं अधिक भूल सामवेद के मन्त्रों को निकाल देने की होगी। अथवा यह कहना कि इन मन्त्रों के अर्थ हो चुके हैं अतः महत्वहीन हैं, इस प्रकार के संदेह या प्रयत्न होना अविद्या देवी की कृपा का परिणाम है।

❑❑❑

वेद प्रचार रथ का लोकार्पण

महाशय धर्मपाल जी ने वेद प्रचार की संभावनाओं के नये द्वार खोले-भव्य वेद प्रचार रथ का निर्माण एवं वेद-प्रचार निमित्त लोकार्पित किया।

सफलता के मूल मन्त्र

आपको उस व्यक्ति से बेहतर कौन बता सकता है जो स्वयं फर्श से अर्श तक पहुँचा हो। महाशय धर्मपाल जी ने खोले अपने अनुभव के खजाने। जिन मूल्यों को अपने जीवन में समाहित कर श्रद्धेय महाशय जी आज शीर्ष पर पहुँच हरदिल अजीज बने हैं उनका अनुगमन करें।

Give up meat eating ②

Dr. Harish Chandra

Courtsy-MEAT EATING An obstacle to our personal and global development
(Publisher-Om Shanti Dham-Bangalore)

Man is like Herbivores : We will now make a set of observations regarding our physiological similarities to the non-meateater animals. For sake of comparison, since the animal kingdom is enormously varied and includes a great variety of species such as beasts, reptiles, insects, fishes, birds, etc., we will isolate a group of species known as mammal. Man is a mammal. Mammals are said to be those species among whom the females produce milk at the time of the birth of their off springs. The other characteristics of mammals include hair on the overall body, a very narrow range of body temperature, etc. The group of mammals is also quite varied with some thousands of species and includes cow, horse, camel, sheep, goat, deer, monkey, elephant, giraffe, rhinoceros, etc., the non-meateater beasts. Cat, dog, fox, tiger, lion, etc. meateater beasts are mammals too, and so are whale, a well known fish, the bird known as bat, and of course, the man.

Among mammals, the following features are observed :

1. The non-meateater's offsprings have their eyes open at the time of their birth like our children have while the meateater's offspring's have their eyes closed at the time of their birth.
2. The non-meateaters drink water by their lips like we do while the meateaters drink by their tongue. Meateater's tongue is rough while that of the non-meateaters is smooth like ours.
3. The alimentary canal, inclusive of the intestines, is much longer than the size of the animals, up to three or four times the size of the species in case of the non-meateaters like man has. On the other hand, it is very short in the meateaters so as to cause quick passage of meat, which may lead to undesirable effects on health if it stays longer in the digestive system.
4. The bowel walls of non-meateaters and man are full of pouches where meat could easily get stuck and putrify. The meateaters' bowel walls are smooth.
5. Meateaters' stomach is highly acidic to digest meat easily. The stomach of non-meateaters and man is alkaline to digest carbohydrates easily.
6. The saliva of man and non-meateaters is alkaline while that of meateaters is acidic.
7. The structure of the teeth of man is similar to that of the non-meateaters, which are flat molars to grind the plant food and are again different from the long canines of meateaters for the purposes of catching the prey, killing and eating.
8. The jaws of the meateaters open wide to capture prey but don't move sideways necessary for grinding plant foods. However, the jaws of non-meateaters, and also of the man,

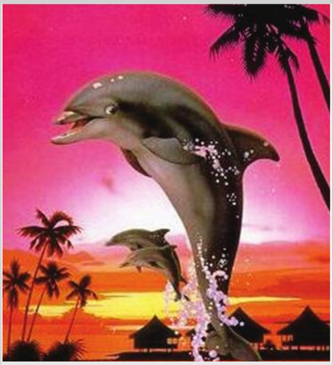

ये सुन्दर, मनमोहक, अबोध जन्तु परमेश्वर की सृष्टि की शान हैं।

जब तुम इन्हें जीवन नहीं दे सकते हो–

तो इन्हें मारने का क्या अधिकार है ?

don't open wide enough but move sideways to grind the produce of vegetation.

9. Meateters have long and sharp claws; the non-meateaters and man have no claws.

10. The liver and the kidney of the meateaters are larger, in proportion to their body size, while that of man and non-meateaters are smaller. Meateaters' larger liver and kidney are capable of removing the toxins from their meat-based foods.

11. Meateaters have a stronger sense of smell. Their eyes can see in darkness too. These qualities are helpful in catching the prey. Man and non-meateaters do not have such qualities.

12. Meateaters' voice is generally unpleasant and has a heavy accent. The voice of the non-meateaters and that of man is of different kind.

13. Animals that are meateaters don't have seminal vesicles. The only animals that have both prostates and seminal vesicles are nonmeateaters. Men among humans, have seminal vesicles, too. In other words, man has the makeup of a non-meateater.

Man is a Herbivore : Above distinctive features indicate that the man is physiologically similar to the non-meateater mammals and thus his food should not include meat, fish and eggs as is the case with the food of the non-meateater mammals. Furthermore, the fact that monkey has a much greater physiological similarity vis a vis man and is a non-meateater adds to the weight of our observation.

Man is a Natural Non-Meateater: Many readers will conclude from the above as if God created man as a non-meateater. A fraction of man's population probably became meateater out of the freedom enjoyed by them. But sure enough, the wrong use of freedom has entailed tremendous pains to the mankind by virtue of the all-pervading justice system (the law of karma) . We find high incidences of cancer, heart attacks, etc. at the individual level, wars and absence of peace at the national level, food problem for a major portion of mankind, break up of the ecological balance, lack of a harmonious life with the nature surrounding us, and so on. It is not to say that meateater man is to blame for all the evils of today but the readers will see in the following pages how meat consumption is related to these evils-many times quit directly and sometimes indirectly.

It is necessary that every one of us should re-examine all his / her habits, including the food habits in the most objective manner.

We would like to appreciate the creation as the one well designed by the most intelligent creator. It is not viewed as made by chance. If even the simplest man- made things such as a brick wall doesn't get made by itself than how come all the wonders of the nature could be made just by itself. Even if one is not comfortable with the idea of the most intelligent creator, the principal conclusion of this chapter remains unchallenged. A number of physiological observations among mammals conclude that man is naturally a non- meateater.

The concept of creator further indicates that if man misuses his freedom and still eats meat, fish and eggs that are not suitable to his physiology than he is bound to suffer from several ailments. We can view this as sample cause and effect that we see in the material world , or as due to law of Karma. The difference is in semantics only. Indeed, the law of karma is a corollary of law of Causation only that the former gets applicable to human beings who are not just a material object but are a conscious being. Of course there gross body is made of matter only, but man as a whole is a combination of matter and sprit both. ❏❏❏

मनुज प्रकृति से शाकाहारी

मनुज प्रकृति से शाकाहारी माँस उसे अनुकूल नहीं है ।
पशु भी मानव जैसे प्राणी वे मेवा फल फूल नहीं हैं ।।
वे जीते हैं अपने श्रम पर होती उनके नहीं दुकानें ,
मोती देते उन्हें न सागर हीरे देती उन्हें न खानें ,
नहीं उन्हें है आय कहीं से और न उनके कोष कहीं हैं ।
केवल तृण से क्षुधा शान्त कर वे संतोषी खेल रहे हैं ।।
नंगे तन पर धूप जेठ की ठंड पूस की झेल रहे हैं ,
इतने पर भी चलें कभी वे मानव के प्रतिकूल नहीं हैं ,
अतः स्वाद हित उन्हें निगलना सभ्यता के अनुकूल नहीं है ।
मनुज प्रकृति से शाकाहारी माँस उसे अनुकूल नहीं है ।।

नदियों का मल खाकर खारा, पानी पी जी रही मछलियाँ ,
कभी मनुज के खेतों में घुस चरती नहीं वे मटर की फलियाँ,
अतः निहत्थी जल कुमारियों के घर आकर जाल बिछाना ,
छल से उन्हें बलात् पकड़ना निरीह जीव पर छुरी चलाना ,
दुराचार है !अनाचार है !यह छोटी सी भूल नहीं है ।
मनुज प्रकृति से शाकाहारी माँस उसे अनुकूल नहीं है ।।

मित्रो माँस को तज कर उसका उत्पादन तुम आज घटाओ,
बनो निरामिष अन्न उगाने–में तुम अपना हाथ बँटाओ,
तजो रे मानव !छुरी कटारी, नदियों में अब जाल न डालो ,
और चला हल खेतों में तुम अब गेहूँ की बाल निकालो ,
शाकाहारी और अहिंसक बनो धर्म का मूल यही है ।
मनुज प्रकृति से शाकाहारी, माँस उसे अनुकूल नहीं है ।।

रचनाकार–श्री धन्यकुमार

As long as people will shed the blood of innocent creatures there can be no peace, no liberty, no harmony between people. Slaughter and justice cannot dwell together.

-Isaac Bashevis Singer

If slaughterhouses had glass walls, everyone would be a vegetarian.

-Paul McCartney

The love for all living creatures is the most noble attribute of man.

- Charles Darwin

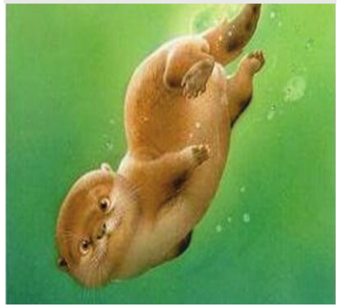

प्रबल राष्ट्र प्रेम के कारण सरकारी अधिकारियों ने आर्यसमाज को सन्देह की दृष्टि से देखना शुरू कर दिया। १९०६-७ में गोरे अखबारों ने आर्यसमाज के राजद्रोही होने का ढोल पीटना आरम्भ कर दिया। सरकार इस प्रचार से बहुत प्रभावित हुई। वह अब आर्यसमाजियों को धर्म एवं समाज का सुधारक नहीं, अपितु राजद्रोह का नेतृत्व करने वाले क्रान्तिकारियों की संस्था समझने लगी। इन अधिकारियों को आर्यसमाज का स्वदेशी और स्वावलम्बन का समर्थन तथा सर्वथा स्वतन्त्र रूप से, सरकार से सहायता न लेते हुए, शिक्षासंस्थाओं, अनाथालयों आदि का संचालन घोर आपत्तिजनक और असह्य प्रतीत हो रहा था। लाला लाजपतराय आर्यसमाज के प्रमुख नेता थे। उन पर बिना मुकदमा चलाये, उन्हें देश-निर्वासन का दण्ड दिये जाने से सरकारी अधिकारियों में आर्यसमाजियों को विद्रोही समझने तथा उनका दमन और उत्पीड़न करने की भावना प्रबल होने लगी। इस समय सरकार आर्यसमाजियों के साथ विद्रोहियों का व्यवहार करने लगी और उनका भीषण दमन किया जाने लगा। आर्यसमाजियों की एक बड़ी संख्या सरकारी कर्मचारियों की थी। सरकार के लिए इनको परेशान करना, सरकारी सेवा से हटाना तथा दण्डित करना आसान था। १९०७ से १९१० तक यह कार्य बड़े पैमाने पर किया गया। भुक्तभोगी होने तथा आर्यसमाज के भीषण दमन का साक्षी होने के कारण लाला लाजपतराय ने पंजाब सरकार द्वारा अपनायी जाने वाली प्रक्रिया का बड़ा सुन्दर विश्लेषण करते हुए लिखा है-

"सरकार शुरू से ही आर्यसमाज के आन्दोलन को सन्देह तथा अविश्वास की दृष्टि से देखती थी। आर्यसमाज के जो नेता सरकारी सेवा में थे, वे अविश्वास की इस नीति का पहला शिकार हुए। उनकी कड़ी परीक्षा ली गई। उनकी पदोन्नतियाँ रोक दी गईं। उनके तबादले बार-बार किये जाने लगे। विभिन्न प्रकार से उन्हें यह अच्छी तरह समझा दिया गया कि यदि सरकार के प्रति उन्होंने अपना रवैया नही बदला तो उन्हें हानि उठानी पड़ेगी। आर्यसमाज ने अपने विद्यालयों, महाविद्यालयों के लिये किसी प्रकार की सहायता की याचना नहीं की थी। उन्होंने अपने अनाथालयों के लिए कोई मदद नहीं माँगी थी। वे उच्च सरकारी अंग्रेज अधिकारियों को अपनी संस्थाओं में निरीक्षण के लिए अथवा उनके विभिन्न समारोहों पर निमंत्रित नही करते थे। वे सरकारी या अर्धसरकारी समारोहों में सम्मिलित नही होते थे। वे किसी भी रूप में सरकार के आगे घुटने नही टेकते थे। लाहौर में वे अपने स्कूलों में सरकारी इंस्पेक्टरों को निरीक्षण के लिए नहीं आने देते थे।

आर्यसमाज को इसके शैशव-काल से ही ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा संदेह की दृष्टि से देखा जाता था, अतः पंजाब में आर्यों का दमन १९ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में ही आरम्भ हो गया था। १८८९ ई. में सर जेम्स लायल के आदेश से छः आर्य छात्र सैण्ट्रल ट्रेनिंग कालेज से निकाले गये थे। 'आर्य पत्रिका' ने २० दिसम्बर १८८९ के अंक में इस आदेश की आलोचना की तथा लेफ्टिनैण्ट गवर्नर से इसे रद्द करने की प्रार्थना की। इसी वर्ष तीन अन्य छात्रों को इसी कालेज से निकाला गया क्योंकि उन्होंने एक पुस्तिका लिखकर यह प्रदर्शित किया था कि स्वामी जी का यजुर्वेद का वेदभाष्य महीधर के भाष्य से उत्कृष्ट है। कट्टरपन्थी सनातनी हिन्दुओं ने इस पर बड़ा शोर मचाया, आन्दोलन किया, सरकार को स्मृतिपत्र भेजे गये कि इसे अश्लील होने के कारण जब्त कर लिया जाय। सरकार ने इसे ऐसा समझा और छात्रों को निष्कासन का दण्ड दिया। ३ जुलाई १८९० को 'वैदिक धर्म एण्ड जयपत्री' तथा 'आर्य पत्रिका' के सम्पादकों को गिरफ्तार किया गया क्योंकि उन्होंने शिवनारायण अग्निहोत्री के विरुद्ध एक रिपोर्ट छापी थी। किन्तु दमन की अधिकांश घटनायें १९०७ में लाला लाजपतराय की गिरफ्तारी के बाद हुईं, जब स्पष्ट रूप से आर्यसमाज को राजद्रोही समझा जाने लगा।

लक्ष्मणराव शर्मा का मामला

श्री लक्ष्मणराव इन्दौर राज्य में राजकीय पुलिस के महानिरीक्षक के कार्यालय में प्रधान लेखाकार थे। वे इन्दौर आर्यसमाज के प्रधान भी थे और इस हैसियत से उन्होंने २१, २२, २३ जून १९०७ को होने वाले आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर नगर-कीर्तन का जुलूस निकालने की अनुमति मैजिस्ट्रेट से प्राप्त की। एक महीना पहले मई १९०७ में लाला लाजपतराय के देश-निर्वासन के कारण जनता में प्रबल असन्तोष था। अतः सरकारी अधिकारियों का दबाव पड़ने के कारण मैजिस्ट्रेट को

अपनी पहली आज्ञा में पर्याप्त संशोधन करना पड़ा। इस समय इन्दौर के महाराजा नाबालिग थे, शासन का सारा कार्य एक परिषद् द्वारा किया जा रहा था। यह ब्रिटिश रेजिडेण्ट के इशारे पर सब कार्य करती थी। अतः जब ब्रिटिश भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन तथा आर्यसमाज के प्रति दमन की नीति अपनाई गई तो इन्दौर में भी इसका अनुसरण किया गया।

पुलिस के महानिरीक्षक को ज्यों ही श्री लक्ष्मणराव के आर्यसमाजी होने का पता लगा तो उन्होंने तत्काल श्री राव को अपने कार्यालय में बुलाया। उनका महानिरीक्षक से निम्नलिखित वार्तालाप हुआ–

महानिरीक्षक– क्या आप आर्यसमाजी हैं?

लक्ष्मणराव– हाँ, श्रीमन्! मैं आर्यसमाजी हूँ।

महानिरीक्षक– क्या आप आर्यसमाज की गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं?

लक्ष्मणराव– मैं इस वर्ष आर्यसमाज का प्रधान हूँ।

महानिरीक्षक– क्या आप मैजिस्ट्रेट से नगर–कीर्तन के जुलूस की अनुमति लेने गये थे?

लक्ष्मणराव– जी हाँ।

> इस लेखमाला के अन्तर्गत हम आपको आर्य समाज के उज्ज्वल अतीत के प्रेरणादायक प्रसंगों को उपस्थित कर रहे हैं जबकि आर्यों ने वैदिक धर्म की रक्षार्थ और प्रसारणार्थ अपना सब कुछ होम दिया था। आशा करते हैं कि ऐसे प्रसंग हमारे अन्दर भी उन भावों को जागृत कर सकेंगे, जिससे आर्य समाज का वर्तमान भी ज्योतिर्मय हो जाये। ऐसे प्रसंगों से हमें पाठक व लेखकगण भी अवगत करा सकते हैं। –सम्पादक

इस पर महानिरीक्षक ने श्री राव को आर्यसमाज से तत्काल पृथक् हो जाने की आवश्यकता पर एक लम्बा भाषण दिया और साथ ही ऐसा करने पर उन्हें पदोन्नति के आकर्षक प्रलोभन दिये। श्री राव ने बार–बार उनसे यह पूछा कि उन्हें आर्यसमाज से क्या शिकायतें हैं? वे इस बारे में उनकी भ्रान्तियाँ दूर करना चाहते थे। उनका यह कहना था कि आर्यसमाज के कुछ विरोधी वर्तमान राजनैतिक आन्दोलन और अशान्ति का लाभ उठाते हुए यूरोपियन अधिकारियों के कान आर्यसमाज के विरुद्ध झूठमूठ भरते रहते हैं; उनकी इन शिकायतों में वस्तुतः कोई सचाई नहीं होती है। पुलिस महानिरीक्षक ने इन बातों का कोई उत्तर नहीं दिया और श्री राव को कहा– ''मैं आपको बहुत ही अच्छा अधिकारी समझता हूँ। मुझे, आपसे कोई शिकायत नहीं है, किन्तु मैं आपसे इस कारण बहुत नाराज हूँ कि आप ऐसी राजद्रोही संस्था के कार्यों में भाग ले रहे हैं।''

इसके बाद उन्होंने उन दिनों इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाले पायोनियर नामक एंग्लोइंडियन दैनिक पत्र से पैराग्राफ पढ़कर सुनाया। इसमें कहा गया था कि पंजाब सरकार आर्यसमाज को एक राजद्रोही संस्था समझती है। इस बारे में महानिरीक्षक ने जब श्री राव की सम्मति जाननी चाही तो उन्हें उत्तर मिला– ''मेरा अन्तःकरण यह कहता है कि आर्यसमाज राजद्रोही संस्था नहीं है। जहाँ तक मेरी जानकारी है, यह विशुद्ध रूप से धार्मिक संस्था है। इसका प्रधान होने के नाते मेरे लिए यह अत्यन्त अपमानजनक होगा कि मैं अन्तिम समय में इसे छोड़ दूँ। अतः मेरा आपसे नम्र निवेदन है कि आप मुझे इस जुलूस में शामिल होने दें, इसके बाद मैं आपके आदेशों का पालन करने का प्रयास करूँगा।'' किन्तु महानिरीक्षक अपनी इस जिद पर अड़े हुए थे कि वे आर्यसमाज से अलग हो जायें। जब श्री राव ने यह बात नहीं मानी तो महानिरीक्षक ने धमकी देते हुए कहा– ''आप इस जुलूस में किसी भी दशा में सम्मिलित नहीं हो सकते हैं। यदि आप ऐसा करेंगे तो आपको नौकरी से बर्खास्त कर दिया जाएगा और आप पर मुकद्दमा चलाया जाएगा।''

श्री राव ने धमकी का दो टूक उत्तर देते हुए बड़ी निर्भीकता से कहा– ''चाहे कुछ भी हो, कैसा भी खतरा क्यों न हो, मैं नगर–कीर्तन के जुलूस में अवश्य सम्मिलित होऊँगा। मैं नौकरी के लिए अपने धर्म से धोखा नही कर सकता हूँ।''

अपने धर्म की रक्षा के लिए श्री राव ने नौकरी पर लात मारने में कोई संकोच नहीं किया। उन्हें १९०७ के राजनैतिक वातावरण में राजद्रोही संस्था का सदस्य होने के कारण अपनी नौकरी से त्यागपत्र देना पड़ा। उनकी गणना धार्मिक विश्वासों के लिए शहीद होने वालों में की जा सकती है।

सेना में आर्यसमाज की गतिविधियों पर पाबन्दी– पंजाब में लाला लाजपतराय की गिरफ्तारी के बाद आर्यसमाज को इतना खतरनाक और राजद्रोही समझा जाने लगा कि पंजाब में एक ब्रिगेड के कमान–अधिकारी (कमांडिंग आफिसर) ने यह आदेश निकाला कि ''सब सैनिकों के लिए आर्यसमाज अथवा किसी राजनैतिक संस्था की बैठकों में सम्मिलित होना निषिद्ध है।'' इसका स्पष्ट अभिप्राय था कि तत्कालीन सैनिक अधिकारी आर्य समाज को धार्मिक नहीं, अपितु ऐसी राजनैतिक संस्था समझते थे, जिसके साथ सम्पर्क अवांछनीय परिणाम उत्पन्न कर सकता था, अतः उन्होंने इस आदेश को जारी करना उचित समझा कि राजद्रोही आर्यसमाजियों से कोई सम्बन्ध न रखा जाए और सैनिक इसकी किसी भी बैठक में उपस्थित न हों।

किन्तु सेना में ऐसे अनेक कर्मचारी थे जो बचपन से आर्यसमाजी थे और सेना में नौकरी पाने के बाद भी समाज के कार्यों में बड़ी दिलचस्पी लेते थे। ऐसे कर्मचारियों तथा अधिकारियों पर यह दबाव डाला जाता था कि वे आर्यसमाज की सदस्यता से त्यागपत्र दे दें, इस संस्था से अपना सम्बन्ध विच्छिन्न कर लें। इस विषय में सैनिक अधिकारी अपने अधीन काम करने वालों

को मौखिक आदेश ही दिया करते थे। किन्तु उस समय सेना में ऐसे अधिकारियों की कमी नहीं थी जो आर्यसमाज के प्रति गहरी आस्था रखने के कारण सेना की सेवा से त्यागपत्र देना अधिक वांछनीय समझते थे। एक अधिकारी ने सैनिक चिकित्सालय में काम करने वाले सहायक चिकित्सक को न केवल आर्यसमाज की सदस्यता से त्यागपत्र देने को कहा, अपितु त्यागपत्र का मसविदा भी तैयार करके दिया। इस पर आर्यसमाजी कर्मचारी ने यह स्मरणीय उत्तर दिया- "मैंने आपके मौखिक आदेशों पर गम्भीर विचार किया है और आर्यसमाज के मन्त्री को दिये जाने वाले त्यागपत्र के मसविदे को भी देखा है। मैं अत्यन्त विनम्रतापूर्वक यह निवेदन करना चाहता हूँ कि मैं अपने परिवार के सब सदस्यों के साथ बचपन से आर्यसमाजी हूँ। यदि मैं इस धार्मिक संस्था से त्यागपत्र दूँगा तो यह कार्य मेरे लिए अन्तःकरण की इच्छा के सर्वथा प्रतिकूल होगा।

"मैं नम्रतापूर्वक इस बात पर भी बल देना चाहता हूँ कि सभी सरकारी कर्मचारियों को धार्मिक मामलों में पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त है, अतः आप इस विषय पर पुनर्विचार करने तथा इस आदेश को वापिस लेने की कृपा करें। इसके लिए मैं आपका अतीव अनुगृहीत रहूँगा।" यह वस्तुतः बड़े आश्चर्य की बात थी कि ब्रिटिश सरकार ने अन्य सभी धर्मों का अनुसरण करने वाले व्यक्तियों को सरकारी कर्मचारी रहते हुए अपने धार्मिक कर्त्तव्यों का पालन करने की पूरी स्वतन्त्रता दे रखी थी; केवल आर्यसमाजी राजद्रोही समझे जाने के कारण इसका अपवाद थे।

'जाट सभा' द्वारा यज्ञोपवीत पर प्रतिबन्ध का विरोध

इस शताब्दी के पहले दशक में संयुक्त प्रान्त आगरा व अवध (वर्तमान उत्तरप्रदेश) में 'जाट सभा' नामक संस्था की स्थापना इस उदेश्य से ही की गयी थी कि वह इस समुदाय के हितों का संरक्षण करे। इस सभा के अधिकांश पदाधिकारी आर्यसमाजी थे और प्राचीन वैदिक परम्परा के अनुसार यज्ञोपवीत धारण करते थे। इस प्रदेश के जाट बड़ी संख्या में ब्रिटिश सेना की देसी रेजिमेण्टों में भरती हुआ करते थे। एक बार इनकी रेजिमेण्ट के स्थानापन्न कमाण्डिंग आफिसर ने अपनी सेना के जवानों को सम्बोधित करते हुए आदेश दिया- "जो सिपाही सेना में अपनी नौकरी बनाये रखना चाहते हैं, उन्हें अपने जनेऊ को तिलांजलि दे देनी चाहिए। यह याद रखना चाहिये कि अब से भविष्य में इसे बागी सिपाही का निशान समझा जायगा।"

सिपाहियों ने इस आदेश को अपने धर्म के प्रतिकूल समझा; जाट सभा को इस मामले की सूचना दी तथा आवश्यक कार्यवाही करने के लिए कहा। जाट सभा ने इस पर उपयुक्त सैनिक अधिकारियों को इस मामले में एक आवेदन पत्र प्रस्तुत करते हुए निवेदन किया कि "यज्ञोपवीत उनके धर्म का पवित्र प्रतीक है, इसका धारण करना उनका धार्मिक कर्त्तव्य है। इस पर प्रतिबन्ध लगाना औरंगजेबी शासन को पुनरुज्जीवित करना होगा। अतः सरकार को यह आदेश फौरन वापिस ले लेना चाहिये।" इस आवेदनपत्र का अधिकारियों पर समुचित प्रभाव पड़ा और सिपाहियों को यज्ञोपवीत धारण करते हुए सेना में बने रहने की अनुमति दे दी गई।

यह घटना इस बात को भली-भाँति स्पष्ट करती है कि उस समय आर्यसमाजियों को सेना में बड़े सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था और किसी उर्वर मस्तिष्क वाले सैनिक अधिकारी ने भ्रान्तिवश राजद्रोही समझे जाने वाले आर्यसमाजियों के प्रभाव से सेना को मुक्त बनाये रखने के लिए जनेऊ पहनने पर पाबन्दी लगाने का अनोखा उपाय ढूँढा था। उसका यह विचार था कि इस प्रतिबन्ध से या तो सैनिक आर्यसमाज का और यज्ञोपवीत का परित्याग करेंगे अथवा सेना की नौकरी से त्यागपत्र दे देंगे। किन्तु जाट सभा की सामयिक और प्रभावशाली कार्यवाही से उस सैनिक अधिकारी की यह इच्छा पूरी न हो सकी।

लाला मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने १९०८ में लाहौर आर्यसमाज के ३१ वें वार्षिकोत्सव पर भाषण देते हुए इस घटना की आलोचना करते हुए कहा था कि "यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि एक ओर इंग्लैंड के प्रबुद्ध शासक इस बात की डींग हाँकते हैं कि उन्होंने दासों को और पराधीन राष्ट्रों को स्वतन्त्रता प्रदान की है, इंग्लैंड में पूर्ण धार्मिक सहिष्णुता की व्यवस्था स्थापित की है; दूसरी ओर ब्रिटिश साम्राज्य के नागरिकों को प्रत्येक सभ्य राज्य के नागरिक को प्राप्त उस प्राथमिक अधिकार से वंचित किया जा रहा है, जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म का पालन करने और उसके द्वारा बताये गये विधि-विधानों का अनुसरण करने की पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त है। ❑❑❑

अंधविश्वास

यहाँ दस बारह वर्ष पूर्व की एक सच्ची और महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख है। बोकारो, राँची मुख्य सड़क के लगभग मध्य में एक छोटा सा गाँव है, जिसमें एक गरीब परिवार रहा करता था। उस परिवार में दो बेटे थे। बड़े बेटे ने गाँव के रोगियों के उपचार में प्रयोग आनेवाली कुछ जड़ी-बूटियों की दुकान खोल ली थी। बचपन से ही छोटे बेटे के आँखों के दोनों पलक सटे होने के कारण वह दुनिया नहीं देख पा रहा था। गरीबी की वजह से इन लोगों ने उसे डाक्टर को भी नहीं दिखाया था और उसे अंधा ही मान लिया था। पर वह अंधा नहीं था , इसका प्रमाण उन्हें तब मिला , जब १६-१७ वर्ष की उम्र में किशोरावस्था में शरीर में अचानक होनेवाले परिवर्तन से उसकी दोनों पलकें हट गयीं और आँखें खुल जाने से एक दिन में ही वह कुछ-कुछ देख पाने में समर्थ हुआ। उसके शरीर में अचानक हुए इस परिवर्तन को देखकर परिवार वालों ने इसका फायदा उठाने के लिए रात में एक तरकीब सोची। खासकर बड़े बेटे ने अपनी जड़ी बूटियों की दुकान को जमकर चलाने के लिए यह नाटक किया। सुबह होते ही छोटा बेटा पूर्ववत् ही लाठी लिए टटोलते-टटोलते गाँव के पोखर में पहुँचा और थोडी देर बाद ही हल्ला मचाया कि उसकी आँखे वापस आ गयी हैं । पूरे गाँव की भीड़ वहाँ जमा हो गयी और पाया कि वह वास्तव में सब कुछ देख पा रहा है। जब लोगों ने इसका कारण पूछा तो उसने बताया कि अभी अभी एक बाबा उधर से गुजर रहे थे , उन्होंने ही उसपर कृपा की है । उन्होंने कहा है कि न सिर्फ तुम्हारी आँख ठीक हो जाएंगी, तुम अब जिन लोगों को आशीर्वाद दे दोगे , वे भी ठीक हो जाएंगे।

पूरा गाँव आश्चर्यचकित था, इस चमत्कार भरे देश में ऐसा चमत्कार होते उन्होंने सुना तो जरूर ही होगा , पर देखने का मौका पहली बार मिला था। पूरे गाँव के लंगड़े, लूले, अंधे, काने, पागल बच्चों को ले लेकर

अभिभावक आने लगे, बड़े भाई की जड़ी-बूटी जमकर बिकने लगी। परिवार वाले तो इतने में ही खुश थे , पर ईश्वर को तो इन्हें छप्पर फाड़कर देना था। यह खबर आग की तरह फैली और दूर-दूर से लोग अपने-अपने परिवार के लाचारों को लेकर आने लगे। उसके दुकान की जड़ी-बूटी कम पड़ने लगीं , फिर नीम वगैरह की सूखी डालियों का उपयोग किया जाने लगा , पर भीड़ थी कि बढ़ती जा रही थी। मौके की नजाकत को समझते हुए बड़े -बड़े बरतनों में नीम की पत्तियाँ उबाली जाने लगीं , उस जल को बोतल में भरकर बेचने के लिए गाँव भर से बोतलों को जमा किया गया । समाचार पत्रों में इस बात की खबर लगातार प्रकाशित होने लगी , शीघ्र ही भीड़ को नियंत्रित करने के लिए पुलिस तक की व्यवस्था करनी पड़ी । एक डेढ़ महीने के अन्दर उस बच्चे की महिमा इतनी फैल चुकी थी कि कि पुलिस की मार से बचने के लिए लोग दूर से ही गाँव में रुपए पैसे फेंक-फेंककर वापस चले जाते थे। जिस गाँव में आजतक एक गाड़ी नहीं गुजरती थी, उस गाँव में बड़ी-बड़ी गाड़ियाँ आकर खड़ी हो गयीं। इधर आसपास की बातों को तो छोड ही दिया जाए, कलकत्ता जैसे दूरस्थ स्थानों से भी बहुत बड़े-बड़े व्यवसायी और सरकारी अधिकारी तक इस 'महात्मा' का दर्शन करने को आ पहुँचे। इतने दिनों तक उस परिवार के अतिरिक्त गाँव के अन्य लोगों ने भी कुछ न कुछ व्यवसाय कर पैसे कमाए। लेकिन बाद में रोगियों की स्थिति में कोई सुधार न होने से उसकी पोल खुली और जनता ने उसके नाटक को समझा, तब तक वे लोग लाखों बना चुके थे।

इसी प्रकार गया में चार हाथोंवाले बच्चे को जन्म देने के बाद उनके मातापिता दो ही दिनों में भक्तों के द्वारा मिलनेवाले चढ़ावे से ही लखपति हो गए। ४८ घंटे तक ही जीवित रहे इस बच्चे को लोगों ने भगवान विष्णु का अवतार माना। भारत में अंधविश्वास इस हद तक फैला है कि यहाँ असामान्य बच्चों को जन्म देनेवाले

माँ-बाप उस बच्चे का इलाज भी नहीं करवाना चाहते । एक माता-पिता के सामने डाक्टर मिन्नतें करते रह गए और उन्होंने बच्चे को सामान्य बनाने के लिए डाक्टरों को कोशिश ही नहीं करने दी। जनता के अंधविश्वासों का ये लोग पूरा फायदा उठाते हैं। जब आज के पढे-लिखे युग में इस प्रकार की घटनाएँ भारतवर्ष में आम हैं , तो पुराने युग के बारे में क्या कहा जा सकता है। समाज से इस तरह के अंधविश्वासों को दूर करने के लिए बहुत सारे लोग और संस्थाएँ कार्यरत हैं, पर सवाल है कि जनता के अंधविश्वास को समाप्त किया जा

क्या ऐसा करने से मनौतियाँ पूरी होंगी ?

सकता है ? एक तरफ जहाँ सम्पूर्ण दुनिया के लोग विकास एवं प्रगति के नए कीर्तिमान स्थापित करने में लगे हुए हैं, वहीं २१वीं सदी के इस वैज्ञानिक युग में भी बिहार प्रदेश के औरंगाबाद जनपद में समाज में फैले अंधविश्वास की पैठ और गहरी होती जा रही है।

अंधविश्वास की जड़ सम्पूर्ण औरंगाबाद जनपद के ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त है। इसी की वजह से ओझा-गुनी और तांत्रिक आज भी भूत-प्रेत भगाने के नाम पर अपना रोजगार चला रहे हैं। इस जनपद का कोई ऐसा गाँव नहीं है जहाँ ओझा, गुनी और तांत्रिक नहीं मिलेगा।

अंधविश्वास में जकड़े भोले-भाले ग्रामीणों को जब किसी प्रकार की बीमारी होती है तो इन्हीं ओझा-गुनियों और तांत्रिक के पास लोग अपना इलाज कराने के लिए जाते हैं। ये ओझा गुनी और तांत्रिक सरदर्द से लेकर कैंसर और एड्स तक का इलाज करने की जिम्मेदारी लेते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों के गरीब लोगों की तबीयत खराब होती है तो वे डॉक्टर को फीस देने के बजाय ओझा और तांत्रिक को मांस, शराब, पैसा और कपड़ा देना ज्यादा पसंद करते हैं। इस जनपद में अंधविश्वास ने इतनी अधिक जड़ जमा ली है कि एक तांत्रिक के कहने पर मकबूलपुर ग्राम-निवासी ने अपने छः वर्षीय बेटे ऋषि की बलि तेज हथियार से काट कर दे दी। तांत्रिक ने उसे बताया था कि अगर तुम अपने बेटे की बलि दे दोगे तो तुम्हें मंत्र की सिद्धि प्राप्त हो जाएगी। इसी भावना में बहकर आवेश में आकर उसने अपने इकलौते बेटे की बलि दे दी।

औरंगाबाद जनपद के ही घुटन बिगहा गाँव में एक ईंट भट्ठा-मालिक ने एक पाँच वर्षीय बालक की बलि दे दी। भट्ठा मालिक को एक तांत्रिक ने बताया कि भट्ठा में आग तभी धरेगा जब आप नरबलि देंगे। भट्ठा - मालिक ने पाँच-वर्षीय विकास कुमार की बलि दे दी। इस लोमहर्षक घटना का पुरजोर विरोध भाकपा माले के राष्ट्रीय नेता एवं ओबरा विधान सभा क्षेत्र के तत्कालीन विधायक राजाराम सिंह ने किया।

अंधविश्वास के जाल में सिर्फ गरीब और अशिक्षित लोग ही नहीं हैं। पढ़े लिखे और अमीर तबके के लोगों में भी अंधविश्वास व्याप्त है। इस जनपद के मदनपुर क्षेत्र के एक गाँव से संभ्रांत परिवार के मृत पाँच वर्षीय बच्चे की लाश कब्र से निकालकर एक ओझा देवसूर्य मन्दिर में लाया था कि उसे जिंदा कर देंगे। उक्त सड़ी लाश को वह तांत्रिक जिन्दा तो नहीं कर सका, अलबता लोगों ने उसकी पिटाई कर उसे स्थानीय थाने के सुपुर्द कर दिया।

भूत-प्रेत से निजात दिलाने के नाम पर इस जनपद के अमझरशरीफ, मनौराशरीफ सिहुली, महुआधाम आदि जगहों पर वर्ष में दो बार विशाल मेला लगता है जहाँ भूत-प्रेत भगाने का स्वांग रचा जाता है। इन मेलों में महिलाओं के साथ यौन-शोषण भी किया जाता है। तंत्र-मंत्र, झाड़-फूँक के नाम पर भोले-भाले ग्रामीणों को बेवकूफ बनाया जा रहा है। उनसे खूब पैसे ऐंठे जा रहे हैं। प्रशासन और सरकार मूकदर्शक बनी हुई है।

❑❑❑

– शम्भू शरण 'सत्यार्थी'

अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए

– महर्षि दयानन्द

अनेक विशेषताओं से युक्त १८८४ के मूल सत्यार्थ प्रकाश के सर्वाधिक नजदीक, तत्कालीन शैली का संरक्षण, मुद्रण अशुद्धियों से रहित

सत्यार्थ प्रकाश (मानक संस्करण) **अवश्य खरीदें।**

प्राप्ति स्थल : श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास, उदयपुर - ३१३००१

- अधिकारी वर्ग से विशेष निवेदन-कृपया अपनी संस्था को 'सत्यार्थ-सन्देश' परिवार से अवश्य जोड़ें।
- विद्वानों से निवेदन है कि वे केवल सत्यार्थ-सन्देश के लिये लिखे गये अपने संक्षिप्त, सारगर्भित लेख प्रेषित करने की कृपा करें।

सत्यार्थ प्रकाश पर लिखे गये व्याख्यात्मक ग्रन्थ

डॉ.भवानी लाल भारतीय

कालजयी शास्त्र ग्रन्थों पर व्याख्याएँ, भाष्य, टीका आदि लिखने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। षड् दर्शनों पर किन भाष्यों का अध्ययन उनके अधिगत विषय को सुगम तथा बोधप्रद बना सकता है, इसका निर्देश स्वामी दयानन्द ने किया है। यद्यपि उनके द्वारा निर्दिष्ट ये सभी भाष्य आज उपलब्ध नहीं हैं। यह भी देखा गया है कि कभी कभी तो व्याख्याकार अपने व्याख्या ग्रन्थ को मूल से भी अधिक कठिन बना देता है। इसी तथ्य को लक्ष्य में रखकर संस्कृतज्ञों में यह कहावत प्रचलित हुई'मघवा मूल बिड़ौजा टीका' अर्थात् मूल ग्रन्थ में 'इन्द्र' के लिए 'मघवा' जैसे कठिन शब्द का प्रयोग था तो टीकाकार ने उसके स्थान पर कोई सरल शब्द (देवराज,देवेन्द्र जैसा) रखने की अपेक्षा 'बिड़ौजा' जैसा कठिन दुर्बोध शब्द रख दिया। तथापि यह सत्य है कि टीका ग्रन्थों की सहायता से हम मूल ग्रन्थ के अभिप्राय को सुगम रीत्या समझ सकते हैं।

कालिदास के ग्रन्थों पर मल्लिनाथ की टीकाएँ विख्यात तथा लोकप्रिय हैं। मनुस्मृति पर लिखी कुल्लूक की टीका को ऋषि दयानन्द ने प्रशस्त नहीं माना। याज्ञवल्क्य स्मृति पर विज्ञानेश्वर की 'मिताक्षरा'टीका हिन्दू लॉ(हिन्दू विधि संहिता) का प्रामाणिक दस्तावेज माना जाता है। इसी प्रकार रामायण एवं महाभारत की टीकाओं ने इन ग्रन्थों के विषय को स्पष्ट किया है। संस्कृत वाङ्.मय का अनुशीलन करने वालों ने यह भी अनुभव किया है कि इन ग्रन्थों के ये टीकाकार साधारण कोटि के पंडित या विचारक न होकर मौलिक विवेचक होते थे। यही कारण है कि वेदान्त दर्शन पर लिखा आचार्य शंकर का भाष्य तो विश्व विश्रुत हुआ ही, उस पर लिखी वाचस्पति मिश्र की 'भामती'टीका भी दर्शन-जगत् में अपना पृथक् स्थान बना सकी। ईश्वरकृष्णा की सांख्यकारिका (सांख्य सप्तति) का अवगाहन चाहे हमें सुकर प्रतीत हो,उस पर लिखी वाचस्पति मिश्र की 'सांख्य तत्त्व कौमुदी' को समझना अवश्य ही दुष्कर है। उन्नीसवीं शताब्दी में ऋषि दयानन्द द्वारा प्रणीत धर्मग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश भी लेखक की कालजयी कृति है। धर्म, दर्शन, नीति, व्यवहार-ज्ञान, राजधर्म, व्यक्ति-धर्म, समाज-धर्म, यहाँ तक कि मतमतान्तरों के तुलनात्मक अध्ययन को समाविष्ट करने वाला यह ग्रन्थ मानव समूह के कर्म और चिन्तन पर प्रभाव डालने में कितना प्रभावशाली सिद्ध हुआ है यह इसी तथ्य से प्रकट होता है कि अब तक लगभग २३ भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है तथा इस पर २०० से भी अधिक ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं।

सत्यार्थ प्रकाश पर लिखे गये व्याख्यात्मक साहित्य की हम चर्चा करते हैं तो ज्ञात होता है कि यद्यपि इस कार्य को व्यक्तिगत स्तर पर तो किया गया, किन्तु किसी संस्था ने यदि इस कार्य को अपनी देखरेख में व्यवस्थित रूप से करवाया होता तथा इसके सभी चौदह समुल्लासों में विवेचित विषयों का सांगोपांग विवेचन-विश्लेषण-समीक्षा प्रस्तुत किया होता तो इस ग्रन्थ पर उठाई गई सभी आपत्तियों का निरसन हो जाता तथा पाठक के लिए उसके सभी विषय सुगम तथा सुबोध हो जाते। ध्यान रहे कि समुल्लास क्रम से सत्यार्थ प्रकाश पर व्याख्या-टीका लेखन का कार्य सीमित क्षेत्र में ही हो सका। इसका यथोपलब्ध विवरण निम्न प्रकार है। पंडित वाचस्पति लिखित प्रथम दो समुल्लासों के भाष्य- लाहौर निवासी पंडित वाचस्पति, एम. ए.,बी.एस.सी) का विस्तृत परिचय अप्राप्त है। वे आर्य प्रादेशिक सभा के अधीन आर्य साहित्य विभाग के अध्यक्ष थे। प्रथम समुल्लास का व्याख्यात्मक भाष्य १९३४ तथा दूसरे समुल्लास का भाष्य १९९५ में लाहौर से छपा। इन उत्कृष्ट व्याख्या ग्रन्थों को दूसरा संस्करण नसीब नहीं हुआ। रामलाल कपूर ट्रस्ट के अनुरोध पर वाचस्पति जी ने आर्याभिविनय का एक सुन्दर व्याख्यात्मक भाष्य (विस्तृत भूमिका सहित)लिखा था जिसे इस ट्रस्ट ने गुटका आकार में कई बार प्रकाशित किया।

तृतीय समुल्लास पर शिवपूजन सिंह कुशवाहा का भाष्य- जीवन पर्यन्त जूता कम्पनी (कानपुर) में टाइपिस्ट के रूप में किरानी(क्लर्क) का काम कर जीविकोपार्जन करने वाले कुशवाहा जी अद्भुत व्यक्तित्व के धनी थे। वे उस कोटि में आते हैं जिनके बारे में अंग्रेज कवि का कथन है- They leave this word unhonoured, unwept and unsung. वे इस संसार (धरती) को जब छोड़ते हैं तो कोई उनके बारे में प्रशंसा के दो शब्द नहीं कहता,न कोई आँसू बहाता है और न उनकी प्रशंसा में कोई कवि काव्य लिखता है या कोई गायक गीत गाता है। जूता कम्पनी से रिटायर

होकर कुछ समय तक रामलाल कपूर ट्रस्ट में, तत्पश्चात् गीताश्रम हरिद्वार तथा गुरुकुल गौतमनगर,दिल्ली में काम करते थे। उनका विशाल पुस्तकालय किस गति को प्राप्त हुआ यह भी ज्ञात नहीं। तीसरे समुल्लास पर लिखना एक चुनौती भरा काम था जिसे कुशवाहा जी ने पूरी जिम्मेदारी से किया। आगे के समुल्लासों की व्याख्या लिखने की उनकी योजना पूरी नहीं हो सकी।

पंडित भारतेन्द्रनाथ का एतद् विषयक प्रयत्न प्रशंसनीय था। उन्होंने स्व-सम्पादित मासिक 'जनज्ञान' के दो अंकों में सत्यार्थ प्रकाश के तेरहवें तथा चौदहवें समुल्लासों में विवेचित ईसाइयत तथा इस्लाम विषयक समीक्षा पर अनेक शोधपूर्ण लेखों का संकलन किया था। निश्चय ही सत्यार्थ प्रकाश में ऐसे अनेक विषय आऐ हैं जिन पर विस्तृत अन्वेषण तथा लेखन की आवश्यकता है। तथापि यह स्वीकार करना होगा कि इस दिशा में अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। 'जनज्ञान' के सम्पादक ने एक पुरस्कार की घोषणा में यह विज्ञापित किया कि सत्यार्थ प्रकाश के सभी समुल्लासों पर विस्तृत व्याख्या ग्रन्थ लिखाये जायेंगे । प्रत्येक ऐसे ग्रन्थ पर एक हजार रु. भेंट (या पुरस्कार) स्वरूप दिये जायेंगे। इस घोषणा का संज्ञान लेते हुए इन पंक्तियों के लेखक डॉ. भारतीय ने ग्यारहवें समुल्लास पर एक विस्तृत व्याख्या ग्रन्थ लिखा। इसे जनज्ञान प्रकाशन ने १९७७ में 'ज्ञानदर्शन' शीर्षक से प्रकाशित किया। कालान्तर में इसका संशोधित संस्करण १९९३ में आर्य प्रकाशन दिल्ली से छपा। इसको मॉरिशस के पंडित सत्य प्रकाश बीगू ने अपने आर्थिक अनुदान से प्रकाशित करवाया था। इस ग्रन्थ की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें ऋषि दयानन्द के पश्चात्वर्ती भारतवर्षीय उन मत-मतान्तरों का भी आलोचनात्मक परिचय दिया गया था जो किसी गुरु या आचार्य के मताधीन हैं। सत्यार्थ प्रकाश में अनेक ऐसे प्रकरण हैं जिन पर विस्तार से लिखा जा सकता है। विगत में कुछ ऐसे प्रयत्न हुए भी हैं। दूसरे समुल्लास में 'नवजात शिशु' को धायी का दूध पिलाना,चतुर्थ समुल्लास में विस्तार से वर्णित नियोग का प्रकरण तथा बन्ध मोक्ष के प्रकरण में मुक्ति की अवस्था के पश्चात् जीवात्मा का परावर्तन आदि ऐसे ही विषय हैं जो विस्तृत विवेचन की अपेक्षा रखते हैं। पंडित तुलसीराम स्वामी,पंडित मनसाराम 'वैदिक तोप',पंडित शिव शर्मा आदि ने इन पर विस्तार से लिखा भी है। पंडित बुद्धदेव मीरपुरी ने लाहोर में 'दयानन्द स्वाध्याय मण्डल' की स्थापना की तथा सत्यार्थ प्रकाश में आये कतिपय विवादास्पद मुद्दों पर सप्रमाण लिखा। ऐसे शोध लेख ट्रेक्ट रूप में छपे-विवाह संस्कार,गर्भाधान और योनि-संकोच,धाया का दूध,मृतक-श्राद्ध खण्डन,वेद भाष्य पर आपत्तियों का निराकरण,पुत्र-परिवर्तन वैदिक है,नियोग और पौराणिक धर्म आदि। सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में ईश्वर के १०८ नामों की व्युत्पत्ति देकर उनकी सारगर्भित व्याख्या की गई है। इसमें कुछ नाम ऐसे भी आ गये हैं जिन्हें परमात्मा का वाचक कहने में लोगों को संकोच होता है तथा प्राचीन वाङ्.मय में उनके ईश्वर वाचक होने का कोई प्रमाण भी सहजतया नहीं मिलता यथा शनैश्चर,राहु,केतु आदि। मुझे स्मरण आता है कि लगभग पचास वर्ष पूर्व आर्य समाज सरदारपुरा,जोधपुर में प्रवचन करते हुए पंडित रमेश चन्द्र शास्त्री (आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के तत्कालीन मंत्री तथा कालान्तर में दयानन्द कॉलेज अजमेर में संस्कृत प्रवक्ता) ने प्रथम समुल्लास में परमात्मा के वाचक शब्द 'निराकार' की दयानन्द प्रदत्त व्युत्पत्ति की आलोचना कर अपनी शंका प्रस्तुत की थी। ऋषि दयानन्द निर्दिष्ट इन व्युत्पत्तियों पर किए जाने वाले प्रश्नों और शंकाओं के समाधान में पंडित विद्यासागर शास्त्री वेदालंकार (गुरुकुल कांगड़ी के १९१८ के स्नातक) ने 'अष्टोत्तर शतनाम मालिका' नामक ग्रन्थ लिखा' इसे रामलाल कपूर ट्रस्ट ने १९६३ में प्रकाशित किया था। कम विद्वानों का ध्यान इस महत्वपूर्ण शोधकार्य की ओर गया है। ग्रन्थकार ने दयानन्द- उल्लिखित १०८ नामों की व्युत्पत्तियों की सत्यता तथा पुरातन साहित्य में इन नामों के ईश्वर वाचक प्रयोग के दुर्लभ प्रमाण एकत्र किये हैं। इसका पुनः प्रकाशन होना चाहिए।

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती (पूर्वाश्रम में लक्ष्मीदत्त दीक्षित) ने १९९०-९१ में सत्यार्थ प्रकाश में विवेचित विषयों की विवेचना में एक वृहत् ग्रन्थ सत्यार्थ भास्कर (दो खण्ड, सहस्राधिक पृष्ठ) लिखा। इसमें विस्तारपूर्वक सत्यार्थ प्रकाश में आये विषयों की प्रमाण पुरस्सर विस्तृत व्याख्या की गई है। साथ में ग्रन्थ का मूल पाठ भी दिया गया है। यदि लेखक चाहता तो अनावश्यक विस्तार से बचा भी जा सकता था। कारण कि विपुलकाय ग्रन्थों के पाठक भी दुर्लभ होते हैं। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सत्यार्थ प्रकाश जैसे ग्रन्थ की व्याख्या में अभी बहुत कुछ लिखा जाना बाकी है। चौदहवें समुल्लास पर प्रो.महेशप्रसाद मौलवी तथा पंडित रामचन्द्र देहलवी का लेखन प्रकाश में आया है-(मौलवी जी की पुस्तक 'स्वामी दयानन्द और कुरान' तथा देहलवीजी की पुस्तक 'चौदहवें समुल्लास' में उद्धृत कुरान की आयतों का देवनागरी में उत्थान और अनुवाद)। आवश्यकता है कि बौद्ध-जैन विषयक १२ वें,ईसाइयत पर लिखे गये १३ वें तथा इस्लाम विषयक १४ वें समुल्लास पर प्रामाणिक रूप से व्याख्या ग्रन्थ लिखे जाएँ।

३/५-शंकर कॉलोनी,श्रीगंगानगर

❑❑❑

पूज्य स्वामी (डॉ.) ओम् आनन्द सरस्वती का जन्मोत्सव शिक्षा-प्रसार दिवस के रूप में पद्मिनी आर्ष कन्या गुरुकुल परिसर, चित्तौड़ में मनाया गया। इस अवसर पर श्रीमती नर्बदा भांबी, श्रीमती कल्याणी दीक्षित, श्रीमती सुशीला सुवालका, श्रीमती दुर्गा भटनागर व सुश्री संगीता ओझा को महिला-शिक्षा में योगदान के फलस्वरूप इनका अभिनन्दन किया गया। समारोह की अध्यक्षता मीरा स्मृति संस्थान के अध्यक्ष श्री भँवर लाल सिशोदिया ने की। मुख्य अतिथि डॉ. सत्यनारायण व्यास, वि. अतिथि डॉ. (श्रीमती) कल्याण जी शर्मा (मुम्बई) थे।

–सीमा श्रीमाली

वैदिक मिशन, मुम्बई

के तत्त्वावधान में १७ व १८ मार्च २०१२ को आयोजित 'राष्ट्रिय सामवेद सम्मेलन, महर्षि दयानन्द सरस्वती और आर्य समाज की गौरवगाथा' के अवसर पर उद्बोधन प्रदान करते हुए न्यास के कार्यकारी अध्यक्ष अशोक आर्य। मंच पर, आर्य प्रति. सभा बंगाल के मंत्री श्री आनन्द आर्य, आर्य प्रतिनिधि सभा मुम्बई के प्रधान श्री मिठाई लाल सिंह, आर्य प्रतिनिधि सभा छत्तीसगढ़ के प्रधान आचार्य श्री दया सागर, पूज्य स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती, पूज्य स्वामी

धर्मेश्वरानन्द सरस्वती व आर्य प्रतिनिधि सभा मुम्बई के महामंत्री श्री अरुण अब्रोल विराजमान हैं। इस अवसर पर पधारे अनेक विद्वानों ने सत्यार्थ प्रकाश को महर्षि की कालजयी कृति के रूप में प्रस्तुत करते हुए संस्करण २ की प्रामाणिकता पर बल दिया। वैदिक मिशन मुम्बई के अध्यक्ष डॉ.सोमदेव शास्त्री ने सभी अतिथियों को धन्यवाद प्रदान किया। कार्यक्रम हर दृष्टि से सफल व प्रेरणादायी था।

आर्य समाज, धामावाला, देहरादून की स्थापना स्वयं महर्षि दयानन्द के करकमलों द्वारा की गई थी। इस समाज में यज्ञशाला का जीर्णोद्धार किया जा रहा है। समाज प्रधान श्री हर्षवर्द्धन आर्य ने अर्थ सहयोग की अपील की है। ५१०० रु. प्रदान करने वाले दानदाताओं का नाम शिलापट्ट पर लिखा जावेगा।

–आर्यसमाज धामावाला, देहरादून, उत्तरांचल

आर्य समाज छोटी सादड़ी(चित्तौड़) द्वारा आर्य समाज स्थापना दिवस धूमधाम से मनाया गया। पूज्य स्वामी ध्यानानन्द जी, डॉ. सीमा श्रीमाली व वक्ता कर्मवीर जी के सान्निध्य में सारा आयोजन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

–आर्य समाज, छोटी सादड़ी

पूज्य स्वामी आर्येशानन्द जी की सेवाओं को देखते हुए उन्हें वैदिक विरक्त मंडल की 'वैदिक विरक्त सम्मान इकाई' का संयोजक नियुक्त किया गया है।

–स्वामी आर्यवेश

अपने आप में अनूठी परिकल्पना। पूज्य स्वामी शारदानन्द जी सरस्वती के नेतृत्व में दयानन्द विद्यापीठ, आबूरोड की स्थापना आप सभी सहयोग करें। प्राचीन भारतीय संस्कृति व आधुनिक तकनीक का सम्मिश्रण। अर्थ सहयोग आयकर अधिनियम की धारा ८०जी के अंतर्गत कर मुक्त है।

–मोतीलाल आर्य

आर्य उप प्रतिनिधि सभा, जिला भरतपुर का चुनाव, प्रधान- श्री हीरासिंह आर्य, मंत्री- श्री गिर्राज प्रसाद शर्मा, कोषाध्यक्ष- श्री वीरेन्द्र सिंह आर्य, वैदिक प्रवक्ता- श्री गजेन्द्र सिंह आर्य, आर्यवीर दल-प्रभारी-श्री सत्यवीर आर्य

नवसंवत्सर के शुभ अवसर पर आर्य समाज, सोजतनगर जिला पाली द्वारा विशेष समारोह सम्पन्न। कार्यक्रम स्वर्गीय यशवन्त रूचिर की धर्मपत्नी मान्या विद्यावती जी भटनागर के सानिध्य में सम्पन्न हुआ। श्रीमती लीलावती आर्य, ब्रह्मचारी सुरेन्द्र आर्य हरियाणवी, स्वतंत्रता सैनानी स्वर्गीय यशवन्त रूचिर की पत्नी श्रीमती विद्यावती भटनागर आदि कार्यक्रम में उपस्थित थे।

आर्यवीर दल मुम्बई के स्वर्ण जयन्ती वर्ष का समापन एवं स्मारिका का विमोचन ४ से ६ मई २०१२ में भव्य रूप में होगा। सत्यार्थ सन्देश परिवार की ओर से हार्दिक बधाई।

वैदिक संस्कृति प्रशिक्षण शिविर, उदयपुर

५ से ९ जून २०१२ माता लीलावन्ती सभाभार, नवलखा महल, उदयपुर केवल २५ शिविरार्थी, शिविर पूर्णतः निःशुल्क, प्रवेश सुनिश्चित करने हेतु अतिशीघ्र आवेदन करें

– सुरेश मित्तल, संयोजक शिविर

वेद प्रचार यात्रा दिनांक १५ से २९ मई २०१२

प्रो. महावीर, डॉ. सोमदेव शास्त्री, पं. नरेशदत्त, पं. सत्यपाल सरल, पं. भीष्म, पं. जीववर्द्धन शास्त्री आदि विद्वानों का सान्निध्य।

– आर्य समाज, नैनोरा

श्री प्रकाश चन्द्र श्रीमाली

श्री सुरेश चौहान

श्री नारायण मित्तल

आर्य समाज समोरबाग, उदयपुर के नवीन निर्वाचनों में श्री प्रकाश चन्द्र श्रीमाली को सर्व सम्मति से प्रधान, श्री सुरेश चौहान को मंत्री एवं श्री नारायण मित्तल को कोषाध्यक्ष पद पर निर्वाचित किया गया। हमें विश्वास है कि श्री प्रकाश श्रीमाली जी व सुरेश चौहान जी के नेतृत्व में आर्य समाज की गतिविधियाँ सुचारु रूप से चलती रहेंगी। नवनिर्वाचित अधिकारियों को सत्यार्थ-सन्देश परिवार की ओर से हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ।

माता लीलावन्ती सभागार में न्यास का मासिक सत्संग

उदयपुर। दिनांक ७ अप्रेल। आर्य जगत् के प्रख्यात भजनोपदेशक पंडित पन्नालाल पीयूष की धर्मपत्नी (स्वर्गीय) श्रीमती लक्ष्मी देवी व स्वामी संकल्पानन्द जी को स्मृत किया गया। श्री इन्द्रप्रकाश यादव ने 'सत्साहित्य व उपदेशों के माध्यम से प्रचाररत् महर्षि मिशन के दीवाने' के रूप में स्वामी संकल्पानन्द जी के जीवन-चरित्र को उकेरा। हनुमान जयन्ती का पुण्य पर्व होने से न्यास के कार्यकारी अध्यक्ष श्री अशोक कुमार आर्य ने महामना हनुमान को चतुर्वेदविद् के रूप में प्रस्तुत किया। सर्वश्री इन्द्रदेव पीयूष, सुधाकर पीयूष, भवानीदास आर्य ने सुन्दर भजन प्रस्तुत किये। संचालन डॉ. अमृतलाल तापड़िया ने किया।

-पंडित नवनीत आर्य, पुरोहित न्यास

श्री भंवरलाल आर्य

श्री गिरीश जोशी

श्री प्रेम नारायण जायसवाल

आर्य समाज हिरणमगरी, उदयपुर के नवीन निर्वाचनों में श्री भंवरलाल आर्य को सर्व सम्मति से प्रधान, श्री गिरीश जोशी को मंत्री एवं श्री प्रेम नारायण जायसवाल को कोषाध्यक्ष पद पर निर्वाचित किया गया। हमें विश्वास है कि श्री भंवर जी आर्य व गिरीश जी के नेतृत्व में आर्य समाज की गतिविधियाँ सुचारु रूप से चलती रहेंगी। नवनिर्वाचित अधिकारियों को सत्यार्थ-सन्देश परिवार की ओर से हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ।

प्रतिस्वर

'सत्यार्थ सन्देश' पत्रिका का पहला अंक पिछले माह प्राप्त हुआ बहुत ही आकर्षक कागज व उत्तम साम्रगी पढ़ने योग्य प्रदान की, आपका बहुत-बहुत धन्यवाद तथा आपने स्व. श्रद्धेय पूज्य प्रेमभिक्षु के समान समर्पित भावना से, उज्ज्वल भविष्य आर्यसमाज का करने हेतु पत्रिका के प्रकाशन का भार उठाया है, उसके लिए आप धन्यवाद के पात्र हैं।

राजेन्द्र आर्य (हाँसी वाले)

'सत्यार्थ सन्देश' में आपका लेख "अतिथि कब आओगे" ? पढ़ा- स्व. आचार्य प्रेमभिक्षु जी की लेखन शैली का स्मरण हो आया। एक दम आचार्य जी की सी ही शैली में आपका हृदयग्राही लेख है- तदर्थ-साधुवाद। सम्भवतः तब आप छात्र ही थे-जब मैं आपके परिवार से जुड़ा था। राम कृष्ण मिशन के बाद से आर्यसमाज से प्रभावित हुआ, वैदिक आश्रम-मथुरा में प्रेम जी से मिला और स्वामी केशवानन्द जी से वैदिक रीति से आर्य संन्यास दीक्षा ली थी। प्रेम जी प्रेरणा स्रोत रहे। जब तक वे रहे तब तक मैं आश्रम पर काफी समय तक ठहर कर अध्ययन करता रहा। जब तक माता जी रहीं आना-जाना बना रहा। आपने अपने पिता श्री के रिक्त स्थान की पूर्ति करके महान् कार्य किया, प्रसन्नता होती है। परमात्मा आपको शक्ति प्रदान करे कि आप महर्षि-मिशन के सच्चे मिशनरी बनकर स्व. आचार्य जी के स्वप्नों को साकार करेंगे। शेष आप स्वयं विज्ञ हैं।

ब्रह्मानन्द सरस्वती "वेदभिक्षु" बरेली

आपके द्वारा भेजा हुआ आध्यात्मिक पत्रिका 'सत्यार्थ सन्देश' का अंक मिला, धन्यवाद। वेद-सुधा मन को सुकून देने वाला था। डॉ. हरीश चन्द्रा का बेहतरीन लेख- 'Give up meat eating' अच्छा लगा। जब गाय, भैंस और जानवर घास फूस खाकर मीठा दूध देकर अपने शाकाहारी गुण के फलस्वरूप सामाजिक मान्यता प्राप्त कर सकते हैं, तो मुझे समझ में नहीं आता कि मांसाहारी बन कर मनुष्य को राक्षसी-प्रवृति को अपनाने की क्या मजबूरी है। श्री कृष्ण सरल की बेहतरीन कविता 'मातृभूमि पर शीश चढ़ाने ... ' मन को भा गई। अशोक आर्य जी को 'अतिथि कब आओगे ?' जैसे बेमिसाल लेख लिखने के लिये हार्दिक बधाई। पत्रिका के इस अंक की अन्य रचनायें भी इस अंक में चार चाँद लगाने वाली थीं।

- प्रो. शामलाल कौशल, हरियाणा

स्मरण

देहदानी शांति भण्डारी “बहिनजी”

स्व. सुश्री शांति भण्डारी बहिन जी का जन्म झीलों की नगरी और “सत्यार्थ प्रकाश” के रचयिता महर्षि दयानन्द सरस्वती की कार्यस्थली उदयपुर के प्रसिद्ध आर्य समाजी स्व. श्री मोतीलाल जी भण्डारी के यहाँ ११, मई, १९२५ को हुआ। मरुस्थली बीकानेर में आपका आगमन बाल्यकाल में ही परिवार के साथ हुआ। यहीं पर एम.ए., बी.एड. तक शिक्षा हुई। आपने राजकीय शिक्षा सेवा में सहायक अध्यापिका से सर्वोच्च पद संयुक्त निदेशक पद पर १९८० तक का सफर तय किया तथा अपनी मनोयोग पूर्वक, उत्कृष्ट, उल्लेखनीय सेवाओं के लिए राज्यस्तर पर सम्मानित हुईं।

आप स्थानीय नगर आर्य समाज से सम्बद्ध रहते हुए विभिन्न पदों पर कार्यभार सम्पादित करती रहीं। वे वस्तुतः आर्य समाज की संरक्षक थीं। वर्ष १९६० के दशक में आर्य समाज के अनेक बार प्रधान रहे विधिवेत्ता श्री रामचन्द्र जी की छोटी बहिन थीं। आप स्थानीय आर्य समाजों के सामाजिक व धार्मिक पर्वों में सक्रिय व उल्लासपूर्ण भाग लेती रहीं और जब तक आप आसानी से चल फिर सकती थीं, लगभग सभी राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय, आर्य महासम्मेलनों में भाग लेती रहीं। आपको महर्षि दयानन्द सरस्वती की जन्म स्थली टंकारा, सत्यार्थ प्रकाश न्यास स्थली, उदयपुर और महर्षि की निर्वाण स्थली अजमेर से विशेष लगाव था। यहाँ के वार्षिक कार्यक्रमों में न केवल भाग लेती थीं बल्कि टंकारा व अजमेर में तो एक-एक कमरे का निर्माण करवाया तथा सत्यार्थ प्रकाश न्यास, उदयपुर और ऋषि उद्यान, अजमेर को अपनी १२ लाख की वसीयत में क्रमशः ५०,०००/- तथा २५०००/- की राशि देने का उल्लेख किया है। जहाँ नगर आर्य समाज, बीकानेर को अभी एक लाख की राशि मिलनी है, वहीं पूर्व में भी सन् १९८४ में यज्ञशाला के निर्माण के समय २१,०००/- की राशि उदारता पूर्वक दी तथा समय-समय पर आवश्यकतानुसार देती ही रहती थीं।

ध्यातव्य है कि जिस मकान की कीमत १२ लाख मानकर दस व्यक्तियों/संस्थाओं को राशि वसीयत अनुसार दी जानी है। एक अनुमान के अनुसार-लगभग ५० लाख रुपये की कीमत उसकी होगी, तो स्वतः ४ गुना तक राशि मिलने की संभावना है। इस कार्य के लिए बीकानेर के सुविख्यात और ऊर्जावान प्रधान रहे डॉ. एच.एल. खन्ना के सुपुत्र श्री अशोक कुमार खन्ना एडीशनल चीफ इंजीनियर के नेतृत्व में चार सदस्यीय टीम का चयन उन्होंने किया है।

“बहिन जी” सज्जनता, उदारता व संवेदनशीलता की सौम्य मूर्ति थीं। उन्होंने अपनी वसीयत में अपने परिवार को सबसे बाद में और भारत स्काऊट व गाईड तथा आर्य समाज को विशेष स्थान देने के साथ अपने निजी सेवक-सेविकाओं- श्रीमती गीता बाई, ओम स्वामी व अहसान अली के प्रति विशेष स्नेह दर्शाया। “बहिन जी” के शब्दों में “यदि मकान विक्रय से राशि कम या अधिक प्राप्त होती है तो उस कम या अधिक धन राशि को व्यक्ति एवं संस्थाओं में बँटवारे के अनुपात में आवंटित धनराशि में से कम या अधिक कर दिया जावे लेकिन मेरे तीन सेवकों की राशि कम नहीं की जायेगी। मकान की कीमत अधिक मिलने पर यह राशि बढ़ाई जा सकती है।” इससे उनके उदार व विशाल हृदय का परिचय मिलता है।

आप बहुमुखी प्रतिभा तथा बहुआयामी व्यक्तित्व की धनी थीं। सामाजिक संस्थाओं यथा वरिष्ठ नागरिक समिति, भारत विकास परिषद, शिक्षा सेवा समिति आदि से भी गहरा सम्बन्ध था लेकिन भारत स्काऊट गाइड तो उनका प्राण थी, जिसकी मृत्युपर्यन्त संरक्षक रहीं। आप इस आंदोलन से १९५० में जुड़ीं और वहाँ भी त्यागमयी सराहनीय सेवाओं के लिए १९६७ में राष्ट्रीय एवार्ड सिल्वर स्टार से १९९६ में राष्ट्रति द्वारा सर्वोच्च पुरस्कार सिल्वर एलीफैंट से और १९९६ में गोल्डन बीड्स से सम्मानित किया गया।

आपके पैर में फ्रेक्चर होना जानलेवा बन गया और १५ जून, २०११ की रात्रि में अल्प बीमारी के पश्चात् दुःखद निधन हो गया। आपकी शवयात्रा आपके निवास स्थान ‘शांति विला’ से मेडीकल कॉलेज देहदान के लिए रवाना हुई तो विशाल जन समुदाय “जब तक सूरज चाँद रहेगा, बहिन जी तेरा नाम रहेगा” के नारों से आकाश गुंजायमान होता रहा। देहदान के समय शवगृह जन समुदाय से खचाखच भरा था और जब वैदिक मंत्रोच्चार के मध्य देह सुपुर्द की गई तो जन समुदाय की अश्रुधारा फूट पड़ी और कण्ठ अवरुद्ध हो गये। बीकानेर जिले में पहले नेत्रदान और फिर देहदान यह किसी महिला द्वारा किया जाने का पहला अवसर था जो सम्पूर्ण तन, मन व धन दान का अद्वितीय इतिहास बन गया। आप अपने जीवन काल में ही वेदों, उपनिषदों आदि से समृद्ध महत्वपूर्ण विशाल पुस्तकालय आर्ष गुरुकुल, श्रीकोलायत को भेंट कर चुकी थीं। आपके द्वार से कोई भी लोकहितकारी संस्था खाली हाथ नहीं लौटती थी। यही कारण था कि हजारों रुपये प्रतिमाह पैंशन प्राप्त करने पर भी बैंक बैलेन्स नगण्य था।

बहिन जी शांति भण्डारी के बारे में निम्न काव्य पंक्तियाँ उनकी परोपकारी एवं उदार भावना को दर्शाती है-

सब का हित चिंतन उनके मन की निर्मलता थी, सद्गुणों से सम्पन्न, चरित्र की उज्ज्वलता थी,
मोह, लोभ, लालच, पाखण्ड, दंभ से बहुत परे थीं, सत्य सादगी और स्वाभिमान में वे बहुत खरी थीं,
ऐसी पुण्य आत्मा को हमारा शत् शत् नमन, अभिलाषा हमारी यही, करें उनका पथ अनुगमन।

– महेश सोनी
मंत्री आर्य समाज, महर्षि दयानन्द मार्ग, बीकानेर (राज.)

❑❑❑

अपराजेय योद्धा : महाराणा प्रताप

वीर पुरुषों के गौरवपूर्ण आदर्श चरित्रों से मनुष्य जाति एवं राष्ट्रों में एक संजीवनी शक्ति का संचार होता है। इसीलिए प्रत्येक देश अपने वीर पूर्वजों के शिक्षाप्रद और उत्साहवर्धक विस्तृत चरित्र से सदैव प्रेरणा प्राप्त करता रहता है। राजस्थान में भी ऐसे अनेक अनुकरणीय, निस्वार्थी और आदर्श वीर हुए हैं, जिनमें वीर शिरोमणि आर्यकुल-कमल-दिवाकर महाराणा प्रताप सब में अग्रगण्य हैं। महाराणा प्रताप का आसन वीर पुरुषों में बहुत ऊँचा है। भारत में राजस्थान के इतिहास को इतना अधिक उज्ज्वल, आदर्श तथा गौरवपूर्ण बनाने का श्रेय प्रताप को ही है। वस्तुतः वे स्वतन्त्रता के पुजारी स्व-गौरव के रक्षक एवं आत्मस्वाभिमान और वीरता के साकार अवतार थे।

जिस समय पूरा उत्तर भारत मुगल सम्राट अकबर के दरबार में नत हो चुका था, उस समय केवल एक ही राजपूत वीर मुगल सेनाओं के सामने अपनी छोटी-सी सेना के साथ सीना तानकर खड़ा हो गया था। महाराणा प्रताप ने अकबर की अधीनता स्वीकारने से इन्कार कर दिया था। महाराणा प्रताप को प्राणों से भी प्यारी अपनी मातृभूमि की स्वतन्त्रता प्रिय थी। महाराणा सांगा के पौत्र और महाराणा उदयसिंह के सुपुत्र वीर शिरोमणि प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप का जन्म राजस्थान के पाली शहर में ९ मई, सन् १५४० को हुआ था। उनके पिता महाराणा उदयसिंह एक महान् योद्धा थे। उनकी माता का नाम जैवन्ताबाई था। राणा उदयसिंह ने अपनी रानी भटियाणी पर विशेष प्रेम होने के कारण उसके पुत्र जगमाल को प्रताप से छोटा होने पर भी युवराज बनाया था। मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ थी। किन्तु सन् १५५५ में दिल्ली के सिंहासन पर अकबर का अभिषेक हुआ तभी से भारत की राजनीति में एक नया परिवर्तन आया। अकबर भारत का एकछत्र सम्राट बनना चाहता था। चित्तौड़गढ़ पर मुगल सम्राट अकबर की निगाह जमी हुई थी। वह चित्तौड़गढ़ को फतह करने के इरादे से अपनी विशाल सेना लेकर यहाँ आया और उसे चारों ओर से घेर लिया। अकबर ने उदयसिंह के पास प्रस्ताव भेजा- "आप मेरी अधीनता स्वीकार कर लें।" परन्तु उदयसिंह ने उसकी अधीनता स्वीकार करने से साफ इन्कार कर दिया।

जगमाल को अयोग्य सिद्ध होता देख, मेवाड़ के सरदारों ने महाराणा प्रताप को राज्य सिंहासन पर बिठा दिया। जगमाल गोगुन्दा से चलकर अकबर के पास पहुँचा और उसे अपना सारा वृत्तान्त सुनाया। इस पर अकबर ने सिरोही का आधा राज्य जगमाल को दे दिया। वहाँ के राजा सुरताण और जगमाल का विरोध हो गया। अकबर की सहायता से जगमाल ने सुरताण से युद्ध किया। युद्ध में सुरताण की विजय हुई और जगमाल का अन्त हुआ।

अकबर ने गुजरात को विजय कर लिया था। राजधानी लौटकर अकबर ने जयपुर के कुँवर मानसिंह को बहुत-सी सेना के साथ डूँगरपुर तथा उदयपुर की तरफ यह आज्ञा देकर भेजा कि जो हमारी अधीनता स्वीकार करे, उसका सम्मान करना और जो ऐसा न करे उसे दण्ड देना। शाही फौज ने डूँगरपुर को विजय कर लिया और वहाँ का रावल आसकरण पहाड़ों में चला गया। वहाँ से मानसिंह उदयपुर आया और महाराणा को बादशाही सेवा स्वीकार करने हेतु समझाया। महाराणा ने उसका आदर कर स्नेहपूर्ण व्यवहार किया। उदयसागर की पाल पर दी गई दावत में महाराणा के सम्मिलित न होने पर मानसिंह अपमानित हुआ। कुँवर मानसिंह ने बादशाह के पास पहुँचकर अपने अपमान का सारा हाल सुनाया। अकबर ने मानसिंह को ही राणा से युद्ध करने के लिए भेजा। मानसिंह ने खमणोर के पास हल्दीघाटी से कुछ दूर बनास नदी के किनारे डेरा डाला। महाराणा भी गोगुंदा से अपनी सेना तैयार कर मानसिंह से तीन कोस दूरी पर ठहरे। हल्दीघाटी से कुछ ही दूर खमणोर के निकट दोनों सेनाओं के बीच भीषण युद्ध सन् १५७६ की जून में हुआ। इस लड़ाई में अकबर का आश्रित अलबदायूनी भी उपस्थित था। उसने अपनी आँखों देखा वर्णन किया।

राणा कीका (प्रताप) ने अपनी सेना के दो भाग किये। एक विभाग का सेनापति हकीम सूर अफगान था। दूसरे विभाग का सेनापति स्वयं कीका (प्रताप) था। इस युद्ध में ग्वालियर के राजा मान के पोते रामशाह ने, जो हमेशा राणा की हरावल में रहता था, अद्भुत वीरता दिखाई। प्रताप ने बड़ी वीरता के साथ हल्दीघाटी का युद्ध लड़ा। मुगल सेना का सेनापति मानसिंह था। प्रताप ने मानसिंह से सीधा सामना किया। किन्तु मानसिंह के हाथी की सूँड पर पैर रखते समय महाराणा के प्रिय घोड़े चेतक का पैर कट गया। प्रताप शत्रुओं से घिर गये। इस विकट स्थिति में झाला मानसिंह ने अपूर्व वीरता का प्रदर्शन कर महाराणा के प्राणों की रक्षा की।

हल्दीघाटी के सम्बन्ध में दोनों पक्ष अपनी विजय बताते हैं। वस्तुतः दोनों पक्षों के इतिहास को जानने बाद यही निष्कर्ष सामने आता है कि उस समय के संसार के सबसे बड़े सम्पन्न और प्रतापी अकबर के सामने एक छोटे से प्रदेश के राणा प्रताप ने अपनी अद्‌भुत्‌ वीरता दिखाई और मातृभूमि की रक्षा की तथा वह अविजित रहा। बादशाह ने भिन्न-भिन्न अफसरों की अध्यक्षता में महाराणा को अधीन करने या मार डालने के विचार से कई बार मेवाड़ पर सेनाएँ भेजीं और एक बार खुद ने भी चढ़ाई की परन्तु सफलता नहीं मिली।

फिर अकबर ने महाराणा के देहावसान तक अर्थात्‌ ११ वर्ष तक कोई चढ़ाई नहीं की, क्योंकि वह पंजाब की तरफ लड़ाइयों में लगा रहा। महाराणा प्रताप ने १५८६ में चित्तौड़गढ़ और मांडलगढ़ को छोड़कर सारे मेवाड़ को पुनः अपने अधीन कर लिया। महाराणा प्रताप ने मानसिंह और जगन्नाथ कछवाहा की चढ़ाइयों का बदला लेने के लिए आमेर पर हमला किया उसके धनाढ्य नगर मालपुरा को लूटकर नष्ट-भ्रष्ट किया। महाराणा की शेष आयु सुख से व्यतीत हुई। महाराणा ने अपने उजड़े मुल्क को आबाद किया। अधूरे उदयपुर नगर को बसाया। अपने सरदारों को पद, प्रतिष्ठा और सम्मान दिया तथा उनको बड़ी-बड़ी जागीरें दीं। महाराणा प्रताप चावंड के महलों में रहते हुए बीमार पड़े और १९ जनवरी, सन्‌ १५९७ को उनका स्वर्गवास हो गया। जब महाराणा के स्वर्गवास का समाचार अकबर के पास पहुँचा, तो वह स्तब्ध रह गया। उसकी दशा देखकर दरबारी लोगों को आश्चर्य हुआ कि महाराणा प्रताप की मृत्यु से बादशाह को प्रसन्न होना चाहिये था, न कि दुःखी। उस समय प्रसिद्ध डिंगल कवि दुरसा आढ़ा ने निम्नलिखित छप्पय में अपने भाव प्रकट किये-

अस लेगो अणदाग, पाघ लेगो अणनामी, गौ आडा गवडाय, जिको बहुतो धुर वामी।
नवरोजे नह गयो, न गौ असतां नवल्ली, न गौ झरोखाँ हेठ, जेठ दुनियाण दहल्ली।
गहलोत राण जीती गयो, दसण मूंद रसणा डसी, नीसास मूक मारिया नयण, तो मृत शाह प्रतापसी।

"अर्थात्‌ हे गहलोत राणा प्रतापसिंह तेरी मृत्यु पर शाह (बादशाह) ने दाँतों के बीच जीभ दबाई और निश्वास के साथ आँसू टपकाये, क्योंकि तूने अपने घोड़े को दाग नहीं लगने दिया। अपनी पगड़ी को किसी के आगे झुकाया नहीं। तू अपना (आड़ा) यश गवा गया, तू अपने राज्य के धुरे को बाँये कंधे से चलाता रहा, नौरोज में नहीं गया, न आतसों (बादशाही डेरों) में गया, कभी शाही झरोखे के नीचे खड़ा नहीं रहा, तेरो रौब दुनिया पर गालिब था, अतएव तू सब तरफ से जीत गया।"यह सुनकर दरबारियों ने सोचा कि बादशाह इस कवि पर क्रुद्ध होगा, परन्तु बादशाह ने दुरसा आढ़ा को इनाम देकर कहा कि इस कवि ने मेरा ठीक भाव समझा है। ऐसे यशस्वी एवं अपराजेय योद्धा महाराणा प्रताप और उनके उदयपुर का यश सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

डॉ. (सुश्री) सीमा श्रीमाली

❑❑❑

संरक्षक मण्डल - सत्यार्थ सन्देश (₹११,०००)

स्वामी (डॉ.) ओमानन्द सरस्वती, श्रीमान्‌ आनन्द कुमार आर्य, श्री आर.डी. गुप्त, श्री भवानी दास आर्य, एवं

स्वामी (डॉ.) [illegible] सरस्वती
[illegible]

श्री सुरेशचन्द्र अग्रवाल
अहमदाबाद

श्री रतिराम आर्य
सिलीगुड़ी

श्री दीपचंद आर्य
[illegible]

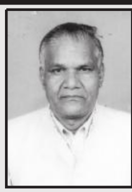
श्री [illegible] आर्य
कोलकाता

श्री दीनदयाल गुप्त
कोलकाता

श्री डी.एल. अग्रवाल
जयपुर

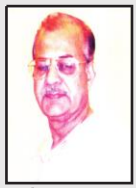
डॉ. देवव्रत आर्य
मुम्बई

(स्व.) आचार्य प्रेमभिक्षु
मथुरा
पावन स्मृति में - [illegible] (पुत्र)

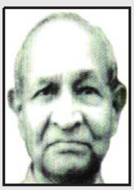
श्री [illegible] अग्रवाल
अहमदाबाद

श्री मिठाईलाल सिंह
मुम्बई

श्री कृष्ण चोपड़ा
यू.के.

श्री नारायणलाल मित्तल
जयपुर

श्रीमती पुष्पा गुप्ता
जयपुर

श्रीमती शारदा गुप्ता
जयपुर

(स्व.) पं. [illegible]
उदयपुर
पावन स्मृति में - [illegible] (पुत्र)

श्री मोती लाल आर्य
आबूरोड़

"[illegible]"
श्रीमती सरोज वर्मा
जयपुर

प्रो. आई. वी. भाटिया
नासिक

श्री राजकुमार गुप्ता एवं श्रीमती सरला गुप्ता
जयपुर

गुप्त दान
उदयपुर

आर्य समाज
गाँधीधाम
गुजरात

आर्य परिवार
संस्था
कोटा-राजस्थान

आर्य समाज, महर्षि दयानन्द मार्ग बीकानेर द्वारा ८६ वर्षीय वरिष्ठतम सदस्य श्री रामचन्द्र आर्य का अभिनन्दन। (मध्य में) बायें स्वामी सत्यानन्द जी,दायें महापौर भवानीशंकर शर्मा । पास में मंत्री महेश सोनी, प्रधान शंभूराम यादव आदि।

श्री नरेन्द्र मोदी (मुख्यमंत्री गुजरात) अर्जुनदेव चड्ढा प्रधान, जिला आर्य सभा, कोटा को 'टंकारा मित्र' की उपाधि से सम्मानित करते हुए।

नवलखा महल (सत्यार्थ प्रकाश भवन)

यह भवन है, विश्वविख्यात् पर्यटन स्थल, झीलों की नगरी, उदयपुर के हृदय स्थल में अवस्थित गुलाब बाग में, युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द की स्मृति को संजोए, पवित्र आकर्षक स्मारक, नवलखा महल। जहाँ मेवाड़ नरेश महाराणा सज्जनसिंह जी के निमंत्रण पर लगभग साढ़े छः मास विराजकर महर्षि दयानन्द सरस्वती ने कालजयी ग्रन्थ रत्न सत्यार्थ प्रकाश का प्रणयन सम्पूर्ण किया। जिसे श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास ने भव्यतम आकर्षक रूप प्रदान कर वैदिक धर्म (भारतीय संस्कृति) के प्रचार का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बनाने का प्रयास किया है।

नवलखा महल उदयपुर का विहंगम दृश्य

प्रमुख आकर्षणः-

१. समृद्ध पुस्तकालय एवं वाचनालय।
२. सत्यार्थ प्रकाश रचनाकक्ष।
३. प्रभु भक्ति व महर्षि महिमा के गीतों की धुनों पर थिरकते व रंगीन आभा बिखेरते रंगीन फव्वारे।
४. भव्य यज्ञशाला जिसके प्रांगण में एक साथ ५०० व्यक्ति बैठ सकते हैं।
५. ६४ सुन्दर तैल चित्रों से युक्त,महर्षि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालती भव्य दीर्घा।
६. जीर्ण-शीर्ण नवलखा महल को वर्तमान स्वरूप प्रदान करके सर्वस्व न्यौछावर कर देने वाले,६० लाख रुपये न्यास को दान करने वाले (स्मृति शेष) पूज्य स्वामी तत्त्वबोध सरस्वती,अध्यक्ष न्यास (पूर्व नाम श्री हनुमान प्रसाद चौधरी) की साधना स्थली-साधना सदन।
७. ऋषि-दर्शन मंत्रमुग्ध कर देने वाला दृश्य-श्रव्य कार्यक्रम (समय ११ से ५ बजे)।
८. घूमती रैक्स में सत्यार्थ प्रकाश के सभी २३ भाषाओं में उपलब्ध अनुवादों की प्रदर्शिनी।
९. महाशय धर्मपाल जी के अनुदान से निर्मित भव्य वातानुकूलित मल्टी मीडिया माता लीलावन्ती सभागार।

सत्यार्थप्रकाश प्रचार सहयोग निधि

- सत्यार्थ प्रकाश से उत्कृष्ट कोई ग्रन्थ नहीं जिसके प्रकाशन में आपकी पुण्य दान राशि का प्रयोग हो। सत्यार्थ प्रकाश प्रचार हेतु,कम राशि में अधिक संख्या में यह महान् ग्रन्थ जन-जन के हाथों में पहुँच सके,एतदर्थ निम्न योजना निर्मित की गई हैः-
- सत्यार्थ प्रकाश (मानक संस्करण) की द्वितीय आवृत्ति छपने में है। कृपया निम्नानुसार सहयोग कर लागत मूल्य से आधी कीमत में सत्यार्थ प्रकाश का दिया जाना सुनिश्चित करें। आपके द्वारा सहयोगार्थ प्रदान की गई राशि के समक्ष अंकित प्रतियों पर आपका अथवा आपके किसी प्रियजन का चित्र ग्रन्थ पर दिया जावेगा।

राशि	प्रतियों की संख्या	राशि	प्रतियों की संख्या
एक लाख रु.	दस हजार	७५०००	७५००
५००००	५०००	२५०००	२५००
१००००	१०००	इससे स्वल्प राशि देने वाले दानवीरों के नाम ग्रन्थ में अंकित किये जायेंगे।	

आपका दान आयकर अधिनियम की धारा ८० जी के अंतर्गत करमुक्त होगा। राशि न्यास के नाम ड्राफ्ट या चैक द्वारा भेजें अथवा यूनियन बैंक ऑफ इंडिया,उदयपुर खाता क्रमांक ३१०१०२०१००४१५९८ में जमा कर सूचित करें।

निवेदक

भवानीदास आर्य
मंत्री-न्यास

भंवरलाल गर्ग
कार्यालय मंत्री

डॉ.अमृत लाल तापड़िया
उपमंत्री-न्यास

जिन सज्जनों को यह पत्रिका प्राप्त हुई है, वे तो अवश्य ही 'सत्यार्थ - सन्देश' परिवार से तुरन्त जुड़ने की कृपा करें।

वेद सम्मेलन उदयपुर

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन एवं श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास, उदयपुर के संयुक्त तत्वावधान में क्षेत्रीय वेद सम्मेलन का आयोजन २८ अप्रैल से ३० अप्रैल २०१२ तक आयोजित किया गया।

झीलों की नगरी उदयपुर, नवलखा महल, गुलाब बाग में माता लीलावन्ती सभागार में इस भव्य समारोह का आयोजन किया गया। इस अवसर पर पूज्यपाद स्वामी ओम् आनन्द जी सरस्वती, अधिष्ठाता आर्यकन्या गुरुकुल, चित्तौड़गढ़, स्वामी शारदानन्द सरस्वती, आबूरोड़, आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वान् वेद मर्मज्ञ डॉ. महावीर मीमांसक , आचार्य वेदप्रकाश श्रोत्रिय, डॉ. रघुवीर वेदालंकार दिल्ली, डॉ. सुभाष वेदालंकार जयपुर, वेदप्रिय शास्त्री कोटा, डॉ. सोमदेव शास्त्री मुम्बई, आचार्य हरिप्रसाद 'व्याकरणाचार्य' गाजियाबाद, डॉ. ओमप्रकाश पाण्डे दिल्ली, डॉ० जितेन्द्र शास्त्री शाहपुरा, डॉ. सहदेव शास्त्री जैतारण, आचार्या धारणा याज्ञिकी शिवगंज, आचार्या सूर्यदेवी चतुर्वेदा शिवगंज, आचार्या नन्दिता शास्त्री वाराणसी एवं देश के विभिन्न भागों से वेदपाठी विप्रगण उपस्थित थे।

श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास, उदयपुर वेद की शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार विभिन्न प्रकल्पों द्वारा करता रहा है। इस दृष्टि से क्षेत्रीय वेद सम्मेलन एक अद्भुत एवं अनोखा प्रयास है, जिसे सफल प्रयास कहा जा सकता है। इस प्रकल्प के सूत्रधार डॉ. सुभाष वेदालंकार, जयपुर रहे। जिनके अथक प्रयास से महर्षि सान्दीपनि वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन के सचिव डॉ. रूप किशोर शास्त्री की प्रेरणा से यह पवित्र समारोह सम्पन्न हुआ।

मध्य काल में वेद जब लुप्त प्रायः हो रहे थे, तब दक्षिण भारतीय ब्राह्मणों ने इस वेद ज्ञान को अपने कण्ठों में सुरक्षित रक्खा। यही परम्परा इस सम्मेलन में देखने को मिली। जब वेदपाठी विप्रगणों ने एवं शिवगंज गुरुकुल की ब्रह्मचारिणियों ने वेद मन्त्र को अलग-अलग पाठ द्वारा सस्वर श्रोताओं के सम्मुख रक्खा। खचा-खच भरे सभागार के श्रोतागणों ने इसे दत्तचित्त होकर सुना और सुनकर मंत्रमुग्ध हो गए। ये उनके जीवन का सौभाग्य था कि उन्हें इस प्रकार से वेद मन्त्रों को सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वानों ने वेद के विषय में एक स्वर में कहा कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है, वेद मानवमात्र के लिए है, वेद की शिक्षाएँ सार्वकालिक, सार्वभौमिक एवं सर्वजनहितकारी हैं। वेद की शिक्षा ही मानव को मानव बनाने का मार्ग प्रशस्त करती है। महर्षि दयानन्द सरस्वती तो स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं कि "जैसे सूर्य के प्रकाश से संसार की समस्त वस्तुएँ प्रकाशित हो जाती हैं वैसे ही वेदज्ञान रूपी सूर्य से अज्ञानरूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है।"

देश में वेद का प्रचार-प्रसार हो, वेद की शिक्षा घर-घर पहुँचे, महर्षि दयानन्द का स्वप्न साकार हो, यह सबकी भावना थी। सान्दीपनि वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन के सचिव सम्माननीय रूपकिशोर शास्त्री जो इस सम्पूर्ण कार्यक्रम के प्रेरक थे, ने प्रस्ताव रक्खा कि आर्यसमाज के पास वेद के मर्मज्ञ, अर्थज्ञ विद्वान् मौजूद हैं और हमारे पास वेदपाठी विप्रगण, वेदपाठी विप्रजनों के पास सस्वर वेद मंत्रोच्चारण की विद्या है तो आर्यसमाज के विद्वानों के पास वेद के अर्थ जानने की कला। यदि इन दोनों कलाओं का आदान-प्रदान परस्पर कर दिया जाय अर्थात् समन्वय स्थापित कर दिया जाय तो निश्चय ही महर्षि दयानन्द का स्वप्न साकार हो सकता है।

– सरोज वर्मा, न्यास प्रवक्ता

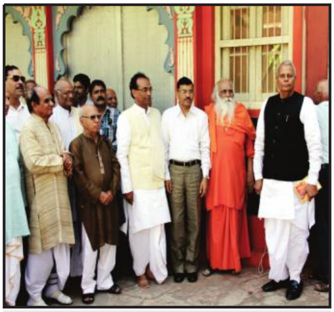

ध्वजारोहण – प्रमुख अतिथि स्वामी (डॉ.) ओम् आनन्द सरस्वती, पुलिस महानिरीक्षक उदयपुर – श्री टी.सी. डामोर एवं श्री मिठाईलाल सिंह

उद्घाटन सत्र – डॉ. रूप किशोर शास्त्री, श्रीमती मधु मेहता (जिला प्रमुख उदयपुर) श्री आई.वी. त्रिवेदी (उपकुलपति-मो.ला.सु.विश्वविद्यालय) एवं अन्य प्रमुख अतिथिगण

ब्र. अग्निव्रत नैष्ठिक द्वारा लिखित पुस्तक 'मेरी प्रथम दृष्टि में ऐतरेय ब्राह्मण – विज्ञान' का लोकार्पण करते हुये मुख्य अतिथिगण

वेदपाठ करते हुए वेदपाठी विप्रगण

आगन्तुक अतिथिगण भ्रमण के दौरान महाराणा प्रताप शौर्य स्थली मोती मगरी का अवलोकन करते हुए

सांस्कृतिक कार्यक्रम के दौरान भजन संध्या की प्रस्तुति करते हुए श्री इन्द्रदेव पीयूष एवं सुधाकर पीयूष साथी कलाकारों के साथ

सभी वैदिक विद्वानों तथा वेदपाठी विप्रगणों को न्यास की ओर से स्मृति-चिह्न देने के क्रम में आचार्या (डॉ.) सूर्यदेवी चतुर्वेदा

माता लीलावन्ती सभागार में आयोजित वेद सम्मेलन में विद्वानों की प्रस्तुति एवं वेद पाठ का आनन्द लेते हुए श्रोतागण

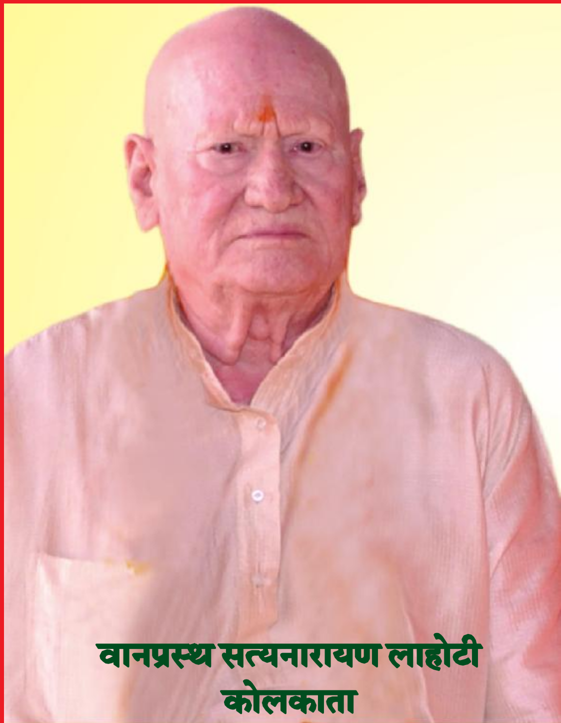

वानप्रस्थ सत्यनारायण लाहोटी
कोलकाता

वानप्रस्थ श्री सत्यनारायण आर्य न्यास के सुदृढ़ स्तम्भ हैं। दानवीर के नाम से विख्यात् वानप्रस्थी जी ने स्वयं के द्वारा व साथियों को प्रेरित कर, उनसे धनराशि एकत्रित कर, आर्य समाज की अनेक संस्थाओं व गुरुकुलों की सहायता की है। यज्ञ व यज्ञशाला से आपको व आपकी दिवंगत धर्मपत्नी माता गुलाबी देवी जी को विशेष प्रेम रहा है। अनेक यज्ञशालाओं का निर्माण आपने करवाया है। न्यास परिसर में स्थित भव्य 'सत्यनारायण गुलाबी देवी यज्ञशाला' का निर्माण आपके अर्थ सहयोग से ही संभव हो सका। यही नहीं अनेक स्थिर निधियाँ करा, यज्ञ में गौ-घृत, उच्चकोटि की सामग्री, चन्दन की समिधा आदि का प्रयोग भी आपने सुनिश्चित कर दिया है।

आज स्वर्गीय माताजी हमारे मध्य में नही हैं, परन्तु वानप्रस्थी जी उनकी स्मृति में अनेक प्रकल्पों को पूरा करने हेतु यत्नशील हैं। परमपिता परमात्मा से आपके निरामय दीर्घायुष्य की प्रार्थना करते हैं।

सौम्य, शालीन, मुस्कराहट से युक्त, स्नेह तथा वात्सल्य की संवेदना को अभिव्यक्त करता आपका व्यक्तित्व आर्य जगत् में सुपरिचित है। ऐसे व्यक्तित्व को न्यासी के रूप में प्राप्त कर न्यास को गौरव की अनुभूति होती है। उदारता, दानशीलता आपके अभिन्न अंग हैं। सत्यार्थ-सन्देश पत्रिका को भी आपका वरद् हस्त प्राप्त है। सादगी तथा विनम्रता आपके पर्याय हैं। वर्तमान में आर्य प्रतिनिधि सभा, मुम्बई को भी सबल नेतृत्व प्रदान कर रहे हैं। परमपिता परमात्मा से न्यास परिवार की यही विनय है कि ऐसे महामना सज्जनों की छत्र-छाया सदैव प्राप्त होती रहे।

श्री मिठाईलाल सिंह जी
मुम्बई

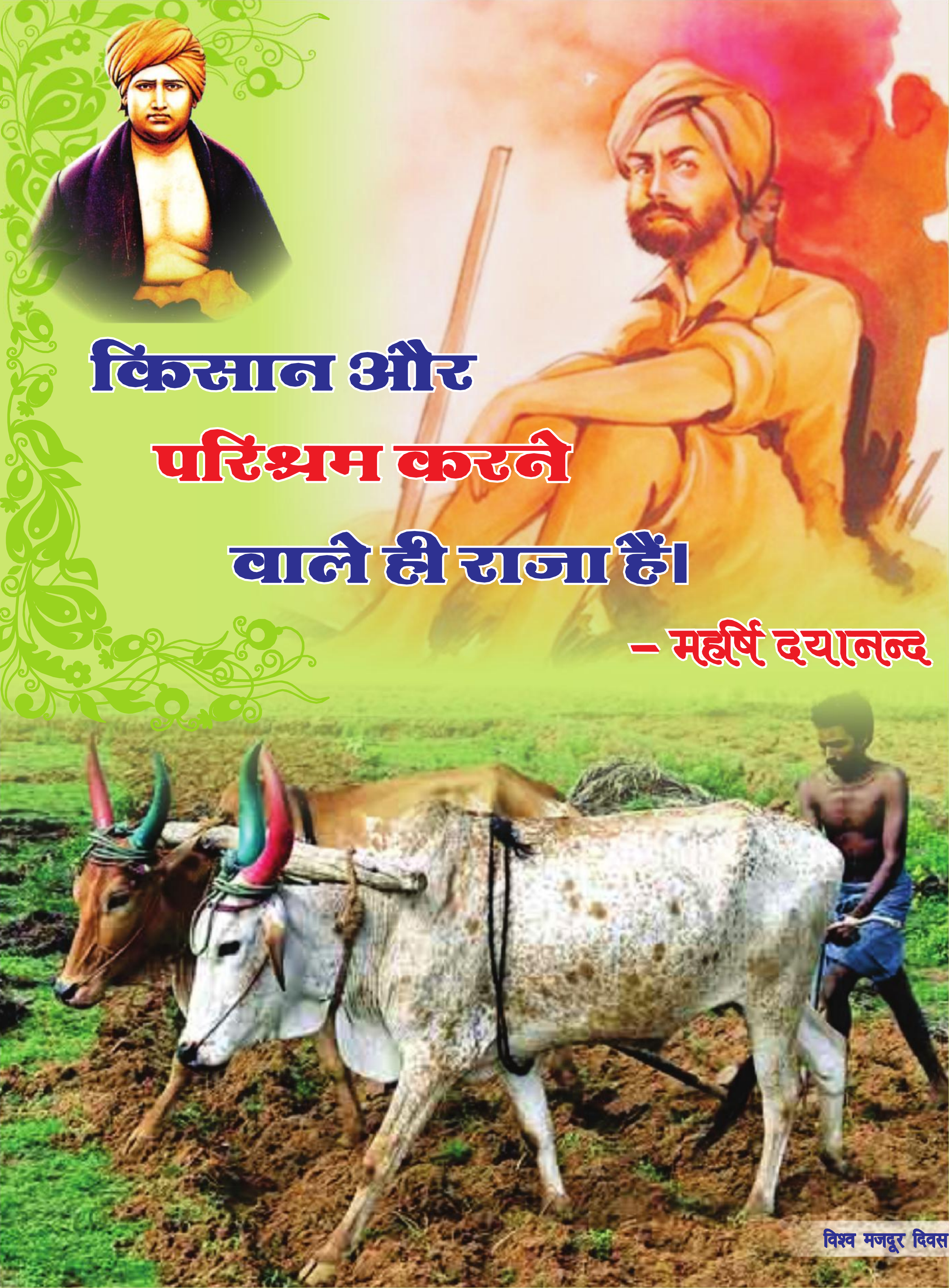
किसान और
परिश्रम करने
वाले ही राजा हैं।
– महर्षि दयानन्द
विश्व मजदूर दिवस